****

अध्याय ·3·

मुद्राराक्षस के असंगत नाटक : विसंगत जीवन-बोध

****

अध्याय : 3

मुद्राराक्षस के असंगत नाटक : विसंगत जीवन-बोध

भूमिका -

मनुष्य, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में काम क्यों न करता हो, अपने जीवन में कहीं न कहीं असंगत आचरण करता पाया जाता है। असंगति मनुष्य जीवन के साथ इस कदर जुड़ी हुई है कि चाहकर भी आदमी उससे अलग नहीं हो सकता। अपने दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में कई बार व्यक्ति को अपने चरित्र से भिन्न भूमिकाएँ निभानी पडती है। व्यवहार में हम देखते हैं कि "समय का महत्त्व" विषय पर बोलने वाला वक्ता समय की पाबन्दी का ध्यान नहीं रखता, "मौन" विषय पर बोलने वाला वक्ता घंटों बातें करता रहता है, इसी प्रकार "शराब के दुष्परिणाम" विषय पर बोलने वाला वक्ता शराबी, शराब-विक्रेता या शराब-उत्पादक भी हो सकता है। "नो पार्किंग" की जगह गाडियाँ पार्क की जाती हैं। जहाँ पेशाब करना या पोस्टर्स चिपकाना मना होता है, उसी जगह लोग पेशाब करते या पोस्टर्स चिपकाते नजर आते हैं। ब्यूटीफुल की संचालिका अक्सर ब्यूटीफुल नहीं होती, केश-कर्तनालय के मालिक के बाल बढ़े हुए होते हैं। लोगों के जूते बनाने वाले चमार के जूते फटे हुए होते हैं। लोगों के कपडे धोने वाला धोबी स्वयं गंदे कपडों में रहता है। दूसरों के अप-टू-डेट कपडे सीने वाले दर्जी के कपडे अप-टू-डेट नहीं होते। इसी प्रकार अंधश्रध्दा निर्मूलन की गप्पे हाँकने वाले लोग अपने घरों में सत्यनारायण की पूजा करते हैं और केश-वर्धक तेल बेचने वाला व्यक्ति भी अक्सर गंजा होता है।

इतना ही नहीं लोगों के जान और माल की रक्षा करने वाले पुलिस अफसर भी भ्रष्टाचारी और रिश्वतखोर होते हैं। कार्यालय में काम करने वाले कर्मचारी कामचोर और निष्क्रिय होते हैं। अपने आपको सभ्य और सुसंस्कृत कहलाने वाले उच्च वर्ग के सुविधाभोगी लोगों में ही असभ्यता और पशुता अधिक दिखाई देती है। नेता लोगों की कथनी और करनी में तो काफी अंतर होता है। पारिवारिक संबंधों में भी विघटन दिखाई देता है। और तो और, हमेशा साथ-साथ रहने वाले पति-पत्नी के बीच भी भावनाहीनता, संबंधहीनता और अजनबीपन

की भावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसी प्रकार आर्थिक विपन्नता, नौकरी की परवशता और जीवन की यांत्रिकता तथा एकरसता व्यक्ति को अपाहिज बना डालती है और परिणामस्वरूप इस विसंगत परिवेश में जीने के लिए विवश आज की युवा पीढ़ी भी नपुंसक आचरण आपनाने को बाध्य होती है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि समसामयिक युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असंगतियों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया है। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक, नैतिक और यहाँ तक कि स्त्री-पुरुषों के भावनात्मक संबंधों में भी असंगतियों ने घर कर लिया है। जीवन के हर क्षेत्र का हर आदमी अपने जीवन-व्यवहार में कहीं न कहीं असंगत होता है। ऊपर से उसका जीवन व्यवस्थित, क्रमबध्द और संतुलित दिखाई देता है, पर अंदर से वह अव्यवस्थित, क्रमविहिन और असंतुलित होता है। उसका सारा जीवन इन असंगतियों को झेलने में ही घटित हो जाता है। जीवन की यही असंगतियाँ मुद्राराक्षस के असंगत नाटकों में विभिन्न रूपों सें अभिव्यक्त हुई हैं।

विसंगत जीवन-बोध के विभिन्न रूप -

1· रक्षक या भक्षक ?

प्रजातंत्र के इस युग में जनता द्वारा चुने गये लोक-प्रतिनिधि देश का कारोबार देखते हैं। लोगों की समस्याएँ सुलझाना, उनके दुःखों को दूर करना, उनके विकास के लिए नयी-नयी योजनाएँ कार्यान्वित करना, अन्याय पीड़ित लोगों को न्याय प्राप्त करा देने में मदद करना, देश-हित का ध्यान रखना और हर तरह से जनता की सेवा करना उनका फर्ज होता है। पर वर्तमान शासक अपने फर्ज को भूलकर स्वार्थ-सिद्वि में व्यस्त है। जनता की सेवा करना तो दूर रहा, वे जनता की समस्याओं से भी परिचित नहीं हैं। सत्तान्धता और स्वार्थान्धता ने उन्हें भ्रष्टाचारी, षड्यंत्रवादी, अवसरवादी और सुविधाभोगी बना दिया है। अपनी सत्ता, पद और प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए वे किसी भी हद तक गिर सकते हैं। नयी-नयी तरकीबें ईजाद कर जनता के ये प्रतिनिधि जनता का ही शोषण करते हैं। रक्षक ही भक्षक बनकर जनता को लूट रहे हैं।

मुद्राराक्षस के "मरजीवा" नाटक का प्लानिंग मिनिस्टर शिवराज गंधे ऐसा ही राजनीतिक नेता है, जो अपने कर्तव्य, आदर्श, नीति और संस्कार आदि की अंत्येष्टि करके स्वार्थ-सिध्दि में जुटा हुआ है। उसके दिखाने के दाँत कुछ और हैं और खाने के दाँत कुछ और। लोगों की हालत जानने का बहाना बनाकर वह दौरे पर तो जरूर निकला है, पर असल में उसके इस दौरे का उद्देश्य लोगों की हालत से परिचित होना नहीं, अपनी धाक जमाना है। उसका आदर्श और भूमि के घर आकर उनके साथ फोटो खींचवाना[1] आधुनिक

नेताओं की अपने नाम का ढिंगोरा पिटवाने की प्रवृत्ति का ही परिचायक है। अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए शिवराज गंधे ने अपने ही घर में राजनीति का बँटवारा किया है। वह स्वयं मिनिस्टर है और उसका छोटा भाई विरोधी दल का नेता है। उसकी सत्ता हारेगी तो इसकी आयेगी, लेकिन सत्ता हमेशा उनके ही घर की बनी रहेगी।

वास्तव में शिवराज गंधे मूल्यहीन, पावित्र्यहीन और चारित्र्यहीन नेता है। अनैतिक आचरण उसके चरित्र का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। औरतों को विभिन्न प्रलोभन दिखाकर अपने बंगले पर बुलाना और उनकी इज़्ज़त लूटना उसके चरित्र की विशेषता है। गंधे द्वारा भूमि को दिया गया नौकरी का आश्वासन वास्तव में नौकरी का आश्वासन नहीं, व्यभिचार का आमंत्रण है। गंधे के बंगले पर रात को जाने का अर्थ है भूमि का उसे समर्पण। आदर्श कहता है- "इनकार करना अब तुम्हारे हाथ में नहीं है। उसने तुम्हें बुलाया इसका मतलब है जाना होगा। और जाने का मतलब? जाने का मतलब जानती हो? ....जाने का मतलब है उस गिध्द के बिस्तर पर सोना।"[2]

मिनिस्टर शिवराज गंधे उन सभी आधुनिक नेताओं का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए कुछ भी करने को तैयार होते हैं। उसे मंत्रीपद से हटाया जाता है, फिर भी वह हार नहीं मानता। प्रधानमंत्री पर दबाव डालकर दुबारा सत्ता हथियाने के लिए वह एक डिमास्ट्रेशन करना चाहता है। अपने प्रतिद्वंदी पारस को सत्ता से हटाने के लिए वह एक षड्यंत्र करता है। इसके लिए वह पुलिस अफसर की मदद से आदर्श को भड़काना चाहता है कि वह जलकर मर जाय। साथ ही लोगों मे वह यह प्रसारित करना चाहता है कि आदर्श की पत्नी के साथ पारस के नाजायज़ ताल्लुकात थे और इससे चीढ़कर आदर्श ने अपनी पत्नी की हत्या की और पागलपन के दौरे में खुद भी जलकर मर गया। गंधे की यह योजना आधुनिक राजनीति के भ्रष्ट वातावरण को प्रस्तुत करने के साथ-साथ राजनीतिक नेताओं की सत्तान्धता, अवसरवादी वृत्ति और स्वार्थी स्वभाव को भी रेखांकित करती है।

गंधे की योजना अस्वीकार कर आदर्श जब भागने लगता है, तो गंधे के इशारे पर वह फिर पकड़ा जाता है। मारकर उसे बेहोश कर दिया जाता है और जल्दी-जल्दी उसके शरीर पर पेट्रोल डालकर आग लगा दी जाती है। अब आदर्श को बचाने वाला कोई नहीं है। रक्षक ही जब भक्षक बने तो क्या किया जा सकता है? यहाँ शिवराज गंधे का भक्षक रूप पूर्णतया उभर आया है।

वर्तमान पुलिस व्यवस्था भी इसका अपवाद नहीं है। वास्तव में समाज में शांतता

और सुरक्षा बनाये रखना, लोगों के जान और माल की रक्षा करना और सही अपराधियों को पकड़कर उन पर मुकदमा दायर करना तथा उन्हें सजा दिलवाना पुलिस व्यवस्था का काम है। पर आज की पुलिस-व्यवस्था भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोरी और षड्यंत्रवादी बनकर अपने रक्षक रूप को भूलकर भक्षक बनी हुई है। वर्तमान पुलिस अफसर सही अपराधियों को छोड़कर सहज ही हाथ आने वाले किसी भी निरीह और निरापराध व्यक्ति को पकड़कर उसे अपराधी घोषित करते हैं। उस पर तरह-तरह के अमानुष अत्याचार कर उसे न किये हुए अपराध की स्वीकृति देने के लिए मजबूर करते हैं। इतना ही नहीं, सच को झूठ और झूठ को सच में बदलना, बडे लोगों के अपराधों पर पर्दा डालना और राजनीतिक नेताओं के साथ मिलकर जनता का शोषण करना उनकी नीति बन गई है। वास्तव में अपने रक्षक रूप को छोड़कर भक्षक बने आज के भ्रष्ट पुलिस अफसर स्वयं बहुत बड़े अपराधी हैं।

"**मरजीवा**" नाटक का पुलिस अफसर उन तमाम पुलिस अफसरों का प्रतिनिधि है, जो रक्षक के रूप में भक्षक है। मिनिस्टर शिवराज गंधे की तरह वह भी अवसरवादी, भ्रष्ट और लम्पट है। भूमि से बातें करते वक्त उसकी आँखे भूमि का शरीर टटोलती रहती हैं और जाते वक्त उसका यह कथन कि-"मिनिस्टर साहब से मिलने के बाद इस ग़रीब को मत भूल जाइएगा"[3]- उसकी काम पिपासा और लम्पटता को सूचित करता है।

नाटक का चौथा और पाँचवा अंक तो पुलिस अफसर के भक्षक रूप को और भी स्पष्टता से व्यंजित करता है। नेपथ्य से सुनाई पड़ने वाली किसी के बुरी तरह मारे जाने की और कराहने की आवाज़ तथा पुलिस अफसर की दहाड़ इसी बात की परिचायक है। बात-बात पर गालियाँ देना, सभी की ओर शक की निगाह से देखना, पकड़े हुए कैदी पर प्रश्नों की बौछार कर उसका मानसिक शोषण करना, तरह-तरह की यातनाएँ देकर उससे मनचाही बात उगलवा लेना तथा झूठ को सच और सच को झूठ में बदलना पुलिस अफसर की विशेषताएँ हैं। युवक और आदर्श के साथ का उसका बर्ताव उसके चरित्र को भली-भाँति उजागर करता है।

पुलिस अफसर के अमानुष अत्याचारों की वजह से जब युवक की मृत्यु हो जाती है[4] तो पुलिस अफसर अपने बचाव के लिए आदर्श का इस्तेमाल करना चाहता है। इसके लिए वह उसका बयान फाड़कर उसे रिहा करने का लालच भी दिखाता है। पर जब आदर्श झूठी गवाही देने के लिए तैयार नहीं होता तो पुलिस अफसर आदर्श के पिता और बीबी की लाशों का मामला युवक के मामले की तरह फाइल में बंद करने और आदर्श का केस नये सिरे से बनाकर उसे पागलखाने भेजने की योजना बनाता है। इतना ही नहीं, आदर्श की

हत्या को आमदाह में बदलने की शिवराज गंधे की योजना में भी वह सक्रिय हिस्सा लेता है। ये सारी बातें उसके शोषक और भक्षक रूप को स्पष्टतः व्यंजित करती हैं।

"तेन्दुआ" नाटक के पुलिस कमिश्नर भूषणराय का चरित्र भी इसी प्रकार का है। सही अपराधी को पकड़ने में जब भूषणराय असफल होता है तो अपनी चमड़ी बचाने के लिए वह केवल संशय के बल पर सहज ही हाथ आने वाले एक निरीह तथा निरापराध माली को पकड़कर लाता है। इतना ही नहीं, उसे पुलिस लॉक अप में रखने के बदले अपनी पत्नी रेनु राय की यौन-परितृप्ति के लिए उसके हाथ सौंप देता है। उसकी यह कृति उसे अपने उत्तरदायित्व से च्युत करती है।

मुद्राराक्षस के असंगत नाटकों में नेता और पुलिस अफसरों के अतिरिक्त कुछ अन्य भी ऐसे पात्र हैं, जो रक्षक के रूप में भक्षक दिखाई देते हैं। "योर्स फेथफुली" में कार्यालय का अफसर ऐसा ही एक पात्र है, जो अपने कार्यालय के कर्मचारियों की विवशता का फायदा उठाता रहता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही का डर दिखाकर जब-तब वह उन्हें सताता रहता है। अपने अधिकार तथा पद का उपयोग वह अपनी अतृप्त यौनेच्छा की पूर्ति के लिए भी करता है। कार्यालय की स्टेनो मिस कंचनरूपा के साथ कार्यालय में ही वह दो बार संभोग करता है। उसके ये क्रिया-व्यापार साबित करते हैं कि वह रक्षक नहीं, भक्षक है।

"तिलचट्टा" नाटक में केशी जिस अस्पताल में काम करती है, उस अस्पताल के डॉक्टर का चरित्र भी कुछ इसी प्रकार का है। देव की पत्नी केशी के साथ उसके नाजायज़ ताल्लुकात के संकेत इसी बात को रेखांकित करते हैं। इसी प्रकार प्रस्तुत नाटक में देव और केशी द्वारा अपने ही बच्चे की हत्या की घटना उन्हें भक्षक के रूप में प्रतिष्ठित करती है। इसके अतिरिक्त "मरजीवा" नाटक में देव द्वारा अपने पिता और पत्नी की हत्या तथा "तेन्दुआ" नाटक में मिसेज रेनु राय और मिसेज मदान द्वारा टार्चर के दौरान हुई माली की हत्या भी प्रस्तुत पात्रों के भक्षक रूप को उभारती है।

2· <u>मनुष्य और पशुता</u> -

आज का मनुष्य सभ्यता की उच्चतम सीढ़ी पर खड़ा है, पर विडम्बना यह है कि उसकी यह सभ्यता ओढ़ी हुई और खोखली है। सभ्यता और संस्कृति के विकास के बावजूद उसमें पाशविकता बराबर बनी हुई है। मनुष्य के भीतर मौजूद पाशविक संस्कारों ने मनुष्य को पशु बना दिया है। पशुओं की तरह आदिम वन्य संस्कारों से युक्त आज का मनुष्य अपनी सभ्यता के आवरण के पीछे क्रूर, हिंसक, बर्बर, नीच और स्वार्थी है। मनुष्यता का

गला घोंट वह पशुता की ओर बढ़ रहा है। इसी कारण अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए किसी भी गंदे मार्ग का अनुसरण करना उसे बुरा नहीं लगता। शायद अतिसंस्कृत बनने पर बर्बरता और पशुता की ओर आकर्षित होना ही उसकी नियति है।

समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के सभी स्त्री-पुरुषों में कम-अधिक मात्रा में पाशविकता होती ही है, पर निम्न या मध्य वर्ग की तुलना में उच्च वर्ग के लोगों में ही इस पाशविकता के दर्शन अधिक होते है। उच्च शिक्षित होने के बावजूद इनका आचरण पाशविकता को लजा देनेवाला है। उच्च वर्ग के ये सुविधाभोगी लोग निम्न वर्ग के लोगों के साथ बहुत ही निदर्यता, क्रूरता, बर्बरता और पाशविकता से पेश आते हैं। उनका यह आचरण मनुष्य के पशु बनने की ओर संकेत करता है।

"पशु जंगली होते हैं और आदमी के भीतर भी वही आदिम वन्य संस्कार मौजूद हैं जिसे पशुत्व कहते है। आधुनिक काल में आदमी ज्यादा से ज्यादा बर्बर, स्वार्थी, नीच, क्रूर, हिंसक और घातक बना है। यही बात कहने के लिए इस युग के नाटककारोंने विभिन्न पशु-प्रतीकों का प्रयोग किया है जिससे उसके भीतर के पशुपन को उभारा जा सके।"[5] मुद्राराक्षस के सभी नाटक मनुष्य के भीतर स्थित इस पाशविकता को भली भाँति प्रस्तुत करते हैं।

प्रायः मुद्राराक्षस के सभी असंगत नाटक युग की असंगतियों और मानव-मन में छिपी पाशविकता को क्रूरता से प्रस्तुत करते हैं। इस संबंध में डॉ॰श्रीमती रीताकुमार का कथन दृष्टव्य है-"वस्तुतः मुद्राराक्षस के चारों नाटक- "तेन्दुआ, तिलचट्टा, मरजीवा, और योर्स फेथफुली-सामयिक युग के विसंगत परिवेश, मनुष्य में सभ्यता के विकास के बावजूद विकास करती पशुता और मानवीय सम्बन्धों के खोखलेपन को बहुत "क्रूड" ढंग से प्रस्तुत करते हैं। अतः इन नाटकों को युग की विकृतियों की क्रूरतम अभिव्यक्ति कहना अत्युक्ति न होगा।"[6]

"मरजीवा" नाटक में आदर्श, पुलिस अफसर और मिनिस्टर शिवराज गंधे के चरित्रों में पाशविकता दिखाई देती है। आदर्श एक बेकार तथा बेरोजगार युवक है। अपनी पत्नी भूमि को मिनिस्टर शिवराज गंधे से बचाने के लिए वह अपने पिता तथा पत्नी के साथ आत्महत्या करने की योजना बनाता है। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए वह अपने बूढ़े पागल पिता को जबर्दस्ती नींद की गोलियाँ खिलाता है। उस पर भी जब उनकी मौत नहीं होती तो चूहेमार व्यक्ति को उनके कमरे में जहरीली दवा डालने के लिए कहता है। इसी प्रकार भूमि पर जब नींद की गोलियों का असर नहीं होता तो उसे मारने के लिए

वह उसके चेहरे पर प्लास्टिक का थैला चढ़ा देता है जिसके कारण भूमि छटपटाकर मरती है। आदर्श द्वारा अपने पिता और पत्नी की हत्या उसके पशुपन को ही प्रस्तुत करती है।

"मरजीवा" नाटक का पुलिस अफसर तो मनुष्य कम है और पशु अधिक। पाशविकता उसके चरित्र की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है। पुलिस स्टेशन में वह किसी कैदी के टखने तोड़ने की आज्ञा देता है। केवल संशय के बल पर पकड़े युवक की किड़नी और पसलियों पर बेरहमी से बूटों की तीखी चोटें कर उसे जान से मार डालता है। इतना ही नहीं, आदर्श की हत्या को आत्मदाह में बदलने की शिवराज गंधे की योजना में भी वह सक्रिय हिस्सा लेता है। ये सारी बातें उसके स्वभाव की पशुता को स्पष्टता से व्यंजित करती है। मिनिस्टर शिवराज गंधे का चरित्र भी मनुष्य के मनुष्यता छोड़ पशु बनने की ओर संकेत करता है। अपने स्वार्थ के लिए वह पेट्रोल डलवाकर आदर्श को जिन्दा जलाता है और उसकी हत्या को आत्मदाह की संज्ञा देता है। उसका यह कृत्य मनुष्यता को भी लजा देने वाला है।

"योर्स फेथफुली" के अफसर का चरित्र भी इसी प्रकार का है। अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को फण्डामेंटल रूल्स और कोड आफ काण्डक्ट का डर दिखाकर उन्हें जब-तब परेशान करना और आफिस स्टेनो मिस कंचनरूपा को अपनी वासना-पूर्ति का साधन बनाकर कार्यालय में ही उसके साथ संभोग करना असकी पाशविक वृत्ति को उभारता है। वास्तव में नौकरी की पराधीनता और अफसर की पशु वृत्ति से तंग आकर ही कंचनरूपा ने आत्महत्या की कोशिश की थी, जिसमें उसका चेहरा जलकर विद्रूप हुआ था। ऐसी जीवित होकर भी मरी हुई घोषित स्टेनो कंचनरूपा के साथ अफसर का संभोग करना पशुता नहीं तो और क्या है? उसका यह पाशविक और घिनौना कार्य देखकर कार्यालय के चपरासी को भी मितली आने लगती है। चपरासी द्वारा दिया गया लाश का दृष्टान्त अफसर की पशुवृत्ति को और भी गहरा करता है।

"तिलचट्टा" नाटक के देव और केशी पति-पत्नी है, पर पति-पत्नी के बीच जो भावनिक, आत्मीय और निकट का संबंध होना चाहिए, उसका उनमें सर्वथा अभाव है। दोनों पात्रों का विकृत, भावनाहीन और संवेदनाशून्य आचरण उनके मन में स्थित पशुता का ही द्योतक है। केशी अपने मानसिक प्रक्षेपण में देखती है कि उसने एक कुत्ते के पिल्ले सदृश बच्चे को जन्म दिया है और जिसे देव और केशी मिलकर मारते हैं। देव और केशी द्वारा अपने ही बच्चे की यह हत्या उन्हें मनुष्य से पशु बना देती है।

"तेन्दुआ" नाटक में पुलिस कमिश्नर भूषणराय, रेनु राय और मिसेज मदान के

क्रिया-व्यापार मनुष्य पशु बन रहा है इस ओर संकेत करते हैं। भूषणराय ग़रीब तथा निरीह माली को ब्रूट और बदमाश समझता है। निम्न वर्ग के लड़कों के संबंध में भी उसकी यही राय है। मनुष्य होकर भी वह उनके साथ मनुष्यता से पेश नहीं आता। उसकी पत्नी रेनु राय भी इसी वृत्ति की है, जो दूसरों को टॉर्चर करने में थ्रिल का अनुभव करती है। भूषणराय और रेनु राय का निम्नलिखित वार्तालाप पशुता और बर्बरता का निदर्शक है -

भूषणराय : ऐसे यह कुछ बताएगा भी नहीं। थर्ड डिग्री मैथड के बगैर ये जानवर कभी रास्ते पर नहीं आते।

रेनु राय : थर्ड डिग्री ? वेरी गुड। तो करो न डियर। आई शैल वाच। मैंने कभी किसी आदमी को टार्चर किये जाते नहीं देखा है। व्हाट ए थ्रिल। डियर करोगे न[7]?

दूसरों की यातनाएँ देखकर थ्रिल अनुभव की करने की पाशविक वृत्ति ही मूलतः इस नाटक का कथ्य है। नाटककार के शब्दों में- "तेन्दुआ" की रचना के पीछे एक छोटी-सी घटना है। घटना का बयान मेरे अभिनेता मित्र कुलभूषण खरबंदा ने किया था। किसी नाटक का मंचन समाप्त करने के बाद कुलभूषण खरबंदा और राजा लौट रहे थे कि रास्ते में गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो गई। दोनों ही बुरी तरह घायल हो गये थे। उस आधी रात के वक्त असहाय, घायल, नीम बेहोशी में उन्होंने सुना-कोई एक गाड़ी उधर से गुजरी, ठिठकी, किसी लड़की ने किसी से पूछा- क्या हुआ ? शायद गाड़ी में ही किसी दूसरे ने कहा- ऐक्सीडेण्ट। लडकी की आवाज आई- हाय, वी मिस्ड ए थ्रिल। गाड़ी आगे बढ़ गई। नाटक का आधार वह एक छोटा-सा फ़िक़रा ही है।"[8]

नाटक में रेनु राय और मिसेज मदान माली की वेदनाओं में ऐसे ही थ्रिल का अनुभव करती हैं। यातनाओं के कारण छटपटाते माली के साथ संगीत के स्वरों पर दोनों का नाचना उनकी पाशविक वृत्ति को ही प्रस्तुत करता है। मिसेज मदान इस मामले में रेनु से भी दो कदम आगे है। माली को टार्चर करने के लिए वह क्रूर से क्रूर तरीकें ढूँढ निकालती हैं। ह्यूमन टार्च के रूप में माली को जलाने का तरीका ऐसा ही है, जो पशुता को भी दो कदम पीछे छोड़ देता है। अतः उसे पशु कहना पशुओं का अपमान करना है, क्योंकि पशु भी किसी के साथ इतनी बेरहमी और पाशविकता से पेश नहीं आते।

3· नैतिकता के नये प्रतिमान -

समाजशास्त्र की मान्यताओं के अंतर्गत मूल्य या जीवन-मूल्य वह आदर्श जीवन-पध्दति है, जिसका पालन करना किसी भी समाज के लिए आवश्यक समझा जाता है।"9 वस्तुतः

समाज में स्वीकृत जीवन-मूल्य ही व्यक्ति जीवन को दिशा देने का काम करते हैं। पर ये जीवन-मूल्य शाश्वत और स्थिर नहीं होते; युग, काल और देश-विशेष की परिस्थितियों के कारण मूल्य हमेशा बदलते रहते हैं। यही कारण है कि हर समाज और देश के अपने जीवन-मूल्य होते हैं।

सम-सामायिक युग में नैतिकता के नये प्रतिमान निर्माण हो रहे हैं। पुराने मूल्य टूट रहे हैं और उनकी जगह नये मूल्य स्थापित हो रहे हैं। पाप और पुण्य की परम्परागत मान्यताएँ भी बदली हुई दृष्टिगत होती हैं। किसी समय का अनुचित आज उचित बन गया है और उचित को अनुचित बताया जाने लगा है। नैतिकता का स्थान अनैतिकता ने लिया है या अनैतिकता ही नैतिकता बन बैठी है। भ्रष्टाचार शिष्टाचार बन गया है और प्रेम तथा यौन संबंधों की परम्परागत अवधारणा भी बदल चुकी हुई है। यौन संबंधों को एक प्राकृतिक भूख मानने के कारण आज का मनुष्य प्रेम किसी और से और यौन संबंध किसी और से स्थापित हो तो उसे अस्वाभाविक नहीं मानता। आज की नारी भी पहले वाली नारी नहीं रही है। पतिव्रता धर्म का पालन करना अब उसके जीवन का आदर्श नहीं रहा। न तो वह पति को परमेश्वर मानती है और न ही चहार-दिवारी के अन्दर बंद कमरों में घुट-घुटकर मरना स्वीकार करती है। समकालीन चिंतन की संवेदना ने उसे भी विद्रोहिणो बना दिया है और वह भी पुरुष की तरह हर क्षेत्र में स्वतंत्रता की चाह करने लगी है।

नैतिक अध:पतन के इस युग में पारिवारिक संबंधों में विघटन दिखाई देता है। आज पति-पत्नो, भाई-बहन, माँ-बेटी, पिता-पुत्र, भाई-भाई, भाभी-देवर, श्वशुर-बहू या मां-बेटी के बीच वे संबंध नहीं रहे, जो पारिवारिक जीवन की आधार-भूमि होते हैं। इन निकटतम संबंधों के बीच भी आज आत्मीयता और भावनात्मकता के स्थान पर संबंधहीनता, अकेलापन और अजनबीपन की भावनाएँ दृष्टिगोचर होती है। परिवार के सदस्य एक दूसरे से कटे हुए और आत्मकेंद्रित बनते जा रहे हैं। व्यक्ति अपने में ही सिमट रहा है। किसी को किसी की चिंता नहीं है। बाप को "बाप" और मां को "मां" कहने में भी आज का व्यक्ति संकोच का अनुभव करने लगा है। स्त्री-पुरूषों के संबंधों में भी गोपनीयता की जगह उन्मुक्तता दिखाई देती है। अपने अन्य प्रेम और यौन संबंधों को वे अब छिपाते नहीं, खुले आम स्वोकार करते हैं।

"मरजीवा" नाटक में समाज के प्रत्येक स्तर पर मूल्य-विघटन दिखाई देता है। नाटक के प्रमुख पात्र आदर्श और भूमि बेकारी, बेरोजगारी तथा नेता और पुलिस अफसर

की लम्पट और स्वार्थी वृत्ति के कारण जीवन से पूरी तरह ऊब चुके हैं। आत्महत्या के अतिरिक्त उनके सामने कोई पर्याय नहीं है। आधुनिक विसंगत परिवेश में शिक्षित पति-पत्नी का आत्महत्या में राहत ढूँढना विसंगत जीवन-बोध है। पति-पत्नी के बीच जो सहज आत्मीय और भावनात्मक संबंध होने चाहिए, उनका इन दोनों में सर्वथा अभाव है। इसी कारण दोनों भी शब्दों से एक-दूसरे को कोंचते हुए दिखाई देते है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

भूमि : ····· शायद मैं भी उसे चाहती थी। वह खूबसूरत था, अमीर था····· मुझे चाहता भी था···· उसने मुझसे कुछ माँगा था उस दिन····

आदर्श : खूबसूरत था···· अमीर था ? लेकिन तुमने बताया था कि वह वही सुकरात जैसा बदसूरत और मुफ्लिस फिलासफर था····

भूमि : मुफलिस फ़िलासफर ? शायद वही रहा हो····· लेकिन उससे फर्क क्या पडता है ?[10]

आदर्श, जो कभी किसी स्कूल में टीचर था और शायद मानवी आदर्श का प्रतीक भी, विसंगत परिवेश के परिवर्तित नैतिक प्रतिमानों के कारण बदल चुका है। वर्तमान परिवेश में आम आदमी को ऐसे अनेक काम करने पड़ते हैं जिन्हें वह चाहता नहीं। आदर्श भी अपनी पत्नी का माडलिंग के क्षेत्र में प्रवेश करना और उसके लिए फोटो खींचवाना तहेदिल से पसन्द नहीं करता, पर अब वह मानता है- "वैसे यह काम बुरा नहीं है और अब तो न जाने कितनी औरतें माडलिंग करने लगी हैं। वे तो स्टूडियो में फोटो खिंचाती हैं। बहुत से फोटो तो बिना कपड़े पहने ही खिंचाने पड़ जाते हैं। यह आदमी तो घर पर ही फोटो खींचेगा। मगर·····"[11]

आदर्श द्वारा अपने पिता को "बूढा" संबोधित करना, मिनिस्टर के होते उनका बाहर न आना अच्छा मानना, नींद की गोलियों के कारण बेहोश पिता को डॉक्टर के पास न ले जाना तथा अपने पिता और पत्नी की हत्या करना आदि बातें भी विघटित जीवन-मूल्यों को व्यंजित करती हैं।

आदर्श के पिता और भूमि के बीच श्वशूर-बहू का संबंध है, पर इस सहज संबंध में भी मूल्य-विघटन दिखाई देता है। भूमि आदर्श के विक्षिप्त पिता से किसी पेशेवर माडेल की तरह फोटो खिंचवाती है। भूमि के काल्पनिक फोटो खींचते वक्त बूढ़े द्वारा बार-बार उसका हाथ पकड़ना, स्कर्ट घुटनों के ऊपर और सीना बाहर करने को कहना तथा ब्लाउज का बटन खोलने के लिए स्वयं उसके पास जाना पारिवारिक संबंधों में विघटन का द्योतक है। इतना ही नहीं, काल्पनिक फोटो दिखाते वक्त बूढे द्वारा भूमि के रूप-सौंदर्य की-विशेषकर

उसके उरोजों की स्तुति करना भी गिरते मानवीय मूल्यों को रेखांकित करता है।

नाटक के अन्य पात्रों में मिनिस्टर शिवराज गंधे, पुलिस अफसर, हवलदार माधो, पत्रकार और चूहेमार व्यक्ति व्यवस्था के विभिन्न पक्षों में व्याप्त अनैतिक तथा भ्रष्ट आचरण को प्रस्तुत करते हैं। मिनिस्टर शिवराज गंधे और पुलिस अफसर दोनों भी व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण घटक होने के बावजूद भूमि से अनैतिक संबंध स्थापित करने की इच्छा रखते हैं। दोनो भी भ्रष्ट, अवसरवादी, क्रूर और स्वार्थी स्वभाव के हैं। अपने स्वार्थ के लिए वे किसी भी हद तक गिर सकते हैं। सच को झूठ में बदलना और झूठ को सच में बदलना इनके बायें हाथ का खेल है। पुलिस अफसर द्वारा युवक की हत्या और मिनिस्टर शिवराज गंधे द्वारा आदर्श की हत्या इसी बात को रेखांकित करती है। हवलदार माधो और पत्रकार भी व्यापक भ्रष्ट व्यवस्था के यांत्रिक पूर्जे हैं, जो पुलिस अफसर और मिनिस्टर शिवराज गंधे के अमानवीय, अनैतिक और भ्रष्ट आचरण को जानते हुए भी उनका विरोध करने के बदले उनका साथ देते हैं। पुलिस अफसर और हवलदार माधो का बात-बात पर गालियाँ देना भी गिरते नैतिक मूल्यों को सूचित करता है।

"**योर्स फेथफुली**" नाटक में भी अफसर, स्टेनो कंचनरूपा, डिस्पेचर, दफ्तर के क्लर्क और चपरासी विघटित जीवन-मूल्यों को रूपायित करते हैं। वास्तव में सरकारी कार्यालय कामकाज की जगह है, पर नाटक में कार्यालय का कोई भी कर्मचारी काम करते हुए नजर नहीं आता। सरकारी कर्मचारियों का दफ्तरमें बैठकर काम के वक्त काम के बदले एक-दूसरे को किस्से सुनाना, चाबी के सूराख से अफसर के चेम्बर में झाँकना, नदी में बहती फूली हुई लाश के साथ सम्पर्क करने की चर्चा करना आदि बातें विघटित मानवीय मूल्यों को रेखांकित करती है। कार्यालय का अफसर कार्यालय में ही आफिस स्टेनो कंचन रूपा के साथ अनैतिक आचरण करता है और कार्यालय के कर्मचारी इस अनैतिक आचरण को देखते हुए भी उसका विरोध नहीं करते।

वास्तव में नाटक में चित्रित क्लर्क नं.3 और स्टेनो कंचन रूपा के बीच पति-पत्नी का रिश्ता है, पर नाटक में कहीं भी एक-दूसरे के साथ वे पति-पत्नी की तरह बर्ताव नहीं करते। दफ्तरी सेवा संहिता के अनुसार पति-पत्नी एक ही दफ्तर में काम नहीं कर सकते, इसलिए दोनों भी अपने इस रिश्ते को छिपाकर रखते हैं। बच्चा होने से भेद खुल सकता है, इसलिए क्लर्क नं 3 ने अपनी नसबंदी करा ली है। अपनी पत्नी के साथ अफसर के नाजायज़ ताल्लुकात जानते हुए भी चुप रहने के लिए वह विवश हैं।अंत में जब यह सहना कठिन हो जाता है तो वह दफ्तरमें ही आत्महत्या करता है। विघटित जीवन-मूल्यों

के आज के विसंगत परिवेश में आत्महत्या के अतिरिक्त आम आदमी और कर भी क्या सकता है ?

"तिलचट्टा" नाटक के पति-पत्नी देव और केशी भी जीवन की निरर्थकता, एकरसता और यांत्रिकता से ऊब चुके हैं। कुत्ते, तिलचट्टे और चूहे इनके सोचने के विषय हैं। वास्तव में पति-पत्नी के स्वस्थ संबंधों के लिए जिस विश्वास-भावना की आवश्यकता होती है, उसका उनमें अभाव है। देव को शक है कि उसकी पत्नी केशी गैर मर्दों से रिश्ता रखती है। बकरे की बोली बोलने वाला काला आदमी, केशी के अस्पताल का काला डॉक्टर और आतंकवादी-सभी की ओर देव शक की निगाह से देखता है। पर केशी कहीं भी देव का शक दूर करती हुई नज़र नहीं आती, बल्कि शब्दों का परपीडन रतिमूलक प्रयोग करती हुई वह उसके शक को बढ़ाती है। होने वाले बच्चे की शक्ल की बारे में वह देव से कहती है- "···· अगर तुमसे मिलती-जुलती शक्ल न भी हो तो फर्क क्या पडता है ? कितने बच्चों की शक्ल अपने बाप से मिलती है ?"[12] इसी प्रकार अपने एबार्शन के बारे में वह देव से कहती है -

केशी : (सहज होकर) जानते हो, देव, डाक्टर ने इन्जेक्शन दिया-कहने लगा कूल्हे पर लगाऊंगा। यहाँ तक साडी उठा दी थी-
(नाभि की ओर इशारा)

केशी : मेरा चेहरा लाल हो गया। डाक्टर पाजी है। आधा घंटा लगा दिया था इंजेक्शन लगाने में। और परेशान ही करता चला गया-ब्लाउज मैंने पकड़ रखा था-उसने खींचकर फाड़ दिया था-[13]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि वर्तमान युग की विसंगत परिस्थितियों में स्त्री-पुरूष संबंधो की परम्परागत मान्यताएँ टूटने लगी हैं। आज की नारी वह नारी नहीं रही जो देव जैसे पुंसत्वहीन पुरूष को पति रूप में पाकर भी सती बनकर रहे। आज स्त्री-पुरूष संबंध केवल यौन-दृष्टि तक ही सीमित है। तिलचट्टे की तरह सड़न-सीलन, गंदगी और अंधेरे मे रहने वाली यौन भावनाएँ अब मुक्त हुई हैं। तिलचट्टे का सड़न से बाहर आना वास्तव में स्त्री-पुरूष संबंधों में स्वतंत्रता का प्रादुर्भाव होने का ही संकेत है। नाटक के अंत में केशी आतंकवादी की जुराबें अपने सीने से लगाकर तीसरे आदमी की स्थिति को मौन स्वीकृति देती है। केशी की यह मौन स्वीकृति परिवर्तित नैतिक मूल्यों को उद्घाटित करती है।

नाटक में आतंकवादियों द्वारा महात्मा गांधीजी की समाधि पर टाइम-बम लगवाना,

मफतलाल का खाने वाले तेल में इंजन का तेल मिलाकर बेचना तथा इसकी सूचना पुलिस को देने वाले दूसरे पिण्डारी के बाप की पुलिस अत्याचार में मृत्यु होना; इसी प्रकार मिनिस्टर के बेटे दारा लड़ाई के दिनों मे जवानों की जरसियां चोर-बाजार में बेचने की खबर लोगों को बताने की सोचने वाले दूसरे पिण्डारी के भाई का गला काट कर मार दिया जाना और उसकी खोज में निकली बहन का लापता होना तथा कभी सही दिशा में सोचने वाले पिण्डारियों का व्यवस्था के हाथों दण्डित होना आदि बातें भी गिरते मानवीय मूल्यों को सूचित करती हैं।

"मुद्राराक्षस के "तेन्दुआ" नाटक में उच्च वर्ग की नारियों के खोखलेपन, उनकी कामकुंठा, वासनात्मक स्वच्छन्दता और "वल्गेरिटी प्रियता" के चित्रण दारा नैतिकता की आयामगत नवीनता का एहसास कराया गया है।"[14] "तेन्दुआ" नाटक में पुलिस कमिश्नर भूषणराय और रेनु राय के बीच पति-पत्नी का रिश्ता है। परम्परागत मान्यता के अनुसार पत्नी हमेशा पति के अधीन होती है, पर यहाँ बाहर के लोगों पर अधिकार जताने वाला भूषणराय स्वयं पत्नी के अधिकार में रहता है। इसी कारण पकड़े हुए बंदी को पुलिस लॉक अप में रखने के बदले वह अपनी पत्नी के हाथ सौंपता है। बदले हुए नैतिक प्रतिमानों के कारण ही रेनु राय बेहिचक अपने पति के पास अपने लिए एक ब्रूट की इच्छा प्रकट करती है। इतना ही नहीं, माली के संबंध में वह अपने पति से स्पष्ट शब्दों में कहती है, "तुम्हें पता है वह मूर्ख माली का बच्चा क्यों गायब हो गया ? मैं जानती हूँ वह मेरे साथ सोना चाहता था और इसलिए डर गया था।"[15]

रेनु का चरित्र यौन-संबंधों की उन्मुक्तता और स्वतंत्रता को उद्घाटित करता है। लडकों के सामने भी वह इसी उन्मुक्तता से पेश आती है। अपने पूर्व प्रेमी कैप्टन श्याम तथा माली के बारे में उसका एकालाप, लड़कों के सामने जाँघ ऊपर तक खोलकर बोरा जाँघ से छुआना, ड्रेस का ट्रायल करने के लिए एक लड़के को ब्लाउज के हुक खोलने के लिए कहना आदि बातें विघटित नैतिक मूल्यों को सूचित करती हैं। अनपढ़, ग़रीब, गँवार तथा मैले से दिखाई देने वाले लड़को में जो सभ्यता, संस्कृति और संस्कार शेष हैं, उच्च शिक्षित होने के बावजूद रेनु में उनका नामोनिशान तक नहीं हैं।

आधुनिक युग में इन्सान का इन्सानियत छोड़ पशुता पर उतर आना भी गिरते मानवीय मूल्यों को संकेतित करता है। मिसेज मदान और रेनु राय जिस कूड तरीके से बदहवास, भयभयीत और अर्धनग्न माली को टार्चर करने की कोशिश करती हैं, उसमें उनकी अमानवीयता और पशुता ही दिखाई देती है। मिसेज मदान का एक ओर अपने जंगली तेन्दुए के साथ

प्यार से पेश आना, उसे किसी प्रकार की तकलीफ न देना तथा उसके मीट न खाने पर दु:खी होना और दूसरी ओर माली के साथ अमानवीय व्यवहार करना विघटित मानवीय मूल्यों को व्यंजित करता है। इसी प्रकार ह्यूमन टार्च के रूप में जलते हुए माली के साथ मिसेज मदान की सोने की कोशिश भी इसी ओर संकेत करती है।

प्रजातंत्र के इस युग में कहने को तो व्यक्ति को अपना मत प्रकट करने की स्वतंत्रता है, पर क्या वाकई उसे यह स्वतंत्रता दी जाती है ? हकीकत यह है कि व्यक्ति-स्वतंत्रता का गला यहाँ खुले आम घोंट दिया जाता है। टूटते मानवीय मूल्यों के इस विसंगत परिवेश में अगर कोई व्यक्ति कुछ कहना चाहता है तो या तो उसे कहने से रोक दिया जाता है या फिर उसके मुँह पर पट्टी बाँध दी जाती है। नाटक में लड़का 3 की कुछ कहने की कोशिश इसी प्रकार दबायी जाती है। माली की लाश को देखकर उसके स्त्री का मौन विलाप भी इसी ओर संकेत करता है। एक ओर प्रधानमंत्री का भाषण चल रहा है तो दूसरी ओर माली की स्त्री मौन विलाप कर रही है और विड़म्बना यह है कि लोग स्त्री के विलाप से प्रधानमंत्री का भाषण अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं, जैसे -

लडका 4 : अजीब मुश्किल है। उधर तो भाषण चल रहा है और यहाँ इसने रोना-धोना शुरू कर दिया।[16]

बदलते नैतिक प्रतिमानों के साथ प्राचीन दान भावना और आधुनिक दान भावना में भी अंतर आया है। प्राचीन दानभावना में जो उदात्तता थी, आज वह नहीं रही है। प्राचीन काल में इस दान वृत्ति के पीछे अपने नाम का ढ़िंगोरा पिटवाने की वृत्ति बिल्कुल नहीं थी, पर आधुनिक काल में अधिकतर लोग इसी वृत्ति से दान देते हैं। प्राचीन काल में लोग अपनी इच्छा से दान दिया करते थे, पर आधुनिक काल में इस दान भावना में इतना परिवर्तन आया है कि दान भी जबर्दस्ती से लिया जाने लगा है। नाटक में माली की मृत्यु पर रो रही माली की स्त्री का दानपत्र पर उसे कुछ बताये बगैर जबर्दस्ती से अंगूठा लगवा लेना और माली की लाश किसी गोरे डॉक्टर को दान दे देना-दानवृत्ति की विसंगति को स्पष्ट करता है।

4· <u>आर्थिक विपन्नता -</u>

आज की प्रचलित जीवन प्रणाली मे "अर्थ" सबसे महत्त्वपूर्ण मानवीय मूल्य बन गया है। परिणाम स्वरूप आज का प्रत्येक व्यक्ति अर्थ-प्राप्ति के साधन जुटाने में व्यस्त है। अर्थ-प्राप्ति की अंधी दौड में कोई भी पीछे नहीं रहना चाहता। आज के युग में अर्थ ही सभी जीवन-व्यवहारों की आधारशिला है। इस कारण पुरूषों के साथ-साथ महिलाएँ

भी अर्थ- प्राप्ति के साधन जुटाने में व्यस्त हैं। समाज या परिवार में व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसकी आर्थिक स्थिति पर ही निर्भर करती है। जिसके पास "अर्थ" है वह उच्च वर्ग का और जिसके पास "अर्थ"नहीं वह निम्न वर्ग का समझा जाता है। आर्थिक असंतुलन ने ही समाज में उच्च और निम्न वर्ग ईजाद किये हैं। इसी आर्थिक विषमता के कारण यह प्रवृत्ति उभर रही है कि उच्च वर्ग के लोग भोग के लिए और निम्न वर्ग के लोग श्रम के लिए पैदा हुए हैं। उच्च और निम्न वर्ग के बीच जो संवादहीनता दिखाई देती है, उसके पीछे भी आर्थिक विषमता ही है। मँहगाई, बेकारी, बेरोजगारी और उससे उत्पन्न आर्थिक विपन्नता के बीच घिरा हुआ आज का मानव दिशाहीन जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।

आज के आधुनिक विसंगत परिवेश में जीवन और मृत्यु के बीच जैसे-तैसे जीवन ढोना आम आदमी की विवशता है। न वह इस स्थिति को बदल सकता है, न उससे बाहर आ सकता है, केवल मृत्यु ही उसे इस स्थिति से छुटकारा दे सकती है। आम आदमी जीवन जीता कम है और ढ़ोता अधिक है। आम आदमी की इस स्थिति के बारे में मुद्राराक्षस के विचार दृष्टव्य हैं- "हमारे देश में तीस करोड़ ऐसे लोग हैं जो इतिहास को सहते हैं, जीते नहीं। इतिहास में उनका हिस्सा नहीं होता। उनकी नियति उन पर धूप की तरह पड़ती है या अंधेरे की तरह उनके चारों ओर घिर आती है।"[17]

"मरजीवा" नाटक के प्रमुख पात्र आदर्श और भूमि दोनों भी आर्थिक विपन्नता से पीडित हैं। उच्च शिक्षित होने के बावजूद उनके पास अर्थ प्राप्ति का कोई साधन नहीं है। आदर्श का टूटानगर के बेकार गंज मुहल्ले में रहना उसके टूटे व्यक्तित्व और बेकारी को सूचित करता है। फर्निचर के नाम पर उसके घर में केवल एक टूटी-फूटी कुर्सी है। आदर्श के घर में मुँह धोने के लिए साबुन नहीं है, पाउडर लगाने के लिए रूई नहीं है और लिपस्टिक के नाम पर तो कुछ सूँघने को भी नहीं बचा है। आर्थिक विपन्नता के कारण वे किसी को चाय तक नहीं पिला सकते। आदर्श की बढ़ी हुई दाढ़ी भी उसके अभावग्रस्त जीवन को सूचित करती है। बेकारी के कारण वह इतना तंग आ गया है कि पत्नी का माडलिंग के लिए फोटो खींचवाना भी अब वह बुरा नहीं मानता। इतना ही नहीं, अप्रत्यक्ष रूप में वह भूमि के समर्पण को भी स्वीकृति देता है।[18]

"योर्स फेथफुली" में दफ्तर के सभी कर्मचारी आर्थिक विपन्नता के शिकार हैं। वे जानते हैं कि दफ्तर के बाहर हो रही हडताल उनके पक्ष में हैं, पर न तो वे हड़तालियों के साथ मिलकर नारे लगा सकते हैं और न ही हड़ताल में हिस्सा ले सकते हैं। हड़ताल में हिस्सा लेना तो दूर रहा, उस दिन वे छुट्टी तक नहीं ले सकते। डिस्पेचर का अपनी

बीबी के बारे में कथन कर्मचारियों की आर्थिक स्थिति को भली भाँति उजागर करता है- "····और फिर तुम शायद नहीं जानते हो····जिन्दगी में कुछ भी नहीं चाहा, कुछ भी नही माँगा था उसने। और वह माँगती भी तो मैं देता कैसे ? एक मामूली काउंटर क्लर्क····"[19] क्लर्क नं 3 और स्टेनो कंचन रूपा की त्रासदी के पीछे भी मूलतः यही कारण वर्तमान है। महँगाई के कारण आधुनिक काल में पति-पत्नी दोनों का अर्थार्जन करना आवश्यक बन गया है। पर दफ्तरी संहिता के अनुसार पति-पत्नी एक ही दफ्तर में काम नहीं कर सकते। परिणाम स्वरूप दोनों भी अपने आपको अविवाहीत बताते हैं। आजीविका की यह विवशता ही कंचनरूपा को अफसर के साथ अनैतिक संबंध रखने को बाध्य करती है और इस अनैतिक संबंध को सह न पाने के कारण ही क्लर्क नं 3 को आत्महत्या करनी पड़ती है। अफसर और दफ्तर के कर्मचारियों के बीच जो संवादहीनता दिखाई देती है उसके पीछे भी आर्थिक विषमता ही कार्यरत है। इस दृष्टि से अफसर का यह कथन दृष्टव्य है- "···· दस बरस पहले मेरी तरक्की हुई थी। अब मैं अपने से छोटे से बात नहीं कर सकता न। और इस दफ्तर में मेरे बराबर का दूसरा नहीं है।"[20]

"तिलचट्टा" नाटक का देव नामर्द है। उसकी पत्नी केशी एक अस्पताल में नर्स है। अपनी कमाऊ पत्नी के सामने देव हमेशा दबकर रहता है। वह जानता है कि उसकी पत्नी गेर मर्दों से रिश्ता रखती है। वह यह भी जानता है कि केशी के पेट में पलने वाला बच्चा उसका नहीं, डॉक्टर का है। स्वयं केशी के संवादों से भी इस बात का संकेत मिलता है।[21] पर देव न तो इसका विरोध कर सकता है और न ही उसे रोक सकता है। अधिक से अधिक वह केवल नफरत प्रकट कर सकता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

"तेन्दुआ" नाटक में आर्थिक स्थिति के अनुसार भूषणराय, रेनु राय और मिसेज मदान उच्च वर्ग के पात्र हैं तो माली, उसकी स्त्री और लड़के निम्न वर्ग के पात्र हैं। आर्थिक असंतुलन के कारण ही उच्च और निम्न वर्ग के इन पात्रों में संवादहीनता दिखाई देती है। भूषणराय और रेनु राय इसी कारण लड़कों से संवाद स्थापित नहीं कर सकते। लड़कों के संबंध में रेनु राय का निम्नलिखित कथन इस दृष्टि से दृष्टव्य है -

रेनु राय : (विंग की ओर उत्साह से) हाय···भूषण····तुम आ गए ? मैं तो यहाँ अकेले मर ही गई हूँ। यू नो ···· दीज फूल्स···· इनसे कोई कम्यूनिकेशन ही नहीं होती····· तुमने कितनी देर लगाई भूषण ?[22]

नाटक का केंद्रीय पात्र माली रेनु को उसके कॉलेज जीवन से ही जानता है। हर दिन वह उसे एक गुलाब का फूल दिया करता था। रेनु के संवादों से स्पष्ट होता है कि वह उसे चाहता भी था और उसके साथ यौन संबंध स्थापित करने की भी उसकी इच्छा थी, पर शायद आर्थिक विपन्नता ही उसे ऐसा करने से रोक देती है। रेनुराय और मिसेज मदान जब उसे तरह-तरह से यातनाएँ देती हैं, तब भी वह चुपचाप सहता रहता है। अत्यधिक यातनाओं के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है, पर उसके मुँह से एक लब्ज तक नहीं निकलता। माली की मृत्यु पर उसकी स्त्री का मौन विलाप भी इसी बात को संकेतित करता है। आर्थिक असंतुलन के कारण ही भूषणराय, रेनु राय और मिसेज मदान जैसे उच्च वर्ग के पात्र ग़रीब और निरीह माली को ब्रूट और बदमाश मानकर उसके साथ अमानवीय और अमानुष बर्ताव करते हैं। नाटक के लड़के भी डर के कारण भूषणराय या रेनु राय के किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देते। भूषणराय और रेनु राय जो कुछ कहते हैं उसे चुपचाप सुनना और तद्नुसार कार्य करना ही उनकी नियति है। आज के विसंगत परिवेश में आम आदमी की नियति केवल चुपचाप सहते जाने के अतिरिक्त और क्या है ?

5· परवशता और यांत्रिकता -

मनुष्य समाजप्रिय प्राणी है और समाजप्रिय प्राणी होने के नाते उसे एक-दूसरे पर अवलंबित रहना पड़ता है। उसके व्यक्तित्व के साथ-साथ उसका सारा जीवन भी परावलंबी है। आजीविका के लिए नौकरी करते वक्त उसे हमेशा दूसरों के अधीन रहकर काम करना पड़ता है। नौकरी की यह पराधीनता या परवशता उसे ऐसे अनेक काम करने के लिए विवश करती है जिन्हें वह चाहता नहीं। अफसर की आॅर्डर उचित है या अनुचित यह सोचना उसका काम नहीं, उसे तो उस उचित या अनुचित आॅर्डर के अनुसार काम करना पड़ता है। उसकी इच्छा-अनिच्छा का यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता। अफसर की इच्छा ही उसकी इच्छा है, अफसर का सत्य ही उसका सत्य है। नौकरी की यह पराधीनता आँख, कान और जीभ के होते हुए भी उसे अंधा, बहरा और गूंगा बना देती है। परिणाम स्वरूप उसका व्यक्तित्व मर जाता है। जीवित होते हुए भी उसकी अवस्था मरे हुऐ आदमी जैसी होती है। नौकरी करनेवाले सभी कर्मचारी, चाहे वे सरकारी हो या गैर-सरकारी, जीवित लाश के अतिरिक्त और क्या है?

नौकरी की परवशता और जीवन की एकरसता मनुष्य को यंत्रो की तरह संवेदनशून्य बनाती है। यंत्रो के सम्पर्क में रहकर आज का मनुष्य स्वयं भी एक यंत्र बन गया है।

उसके सारे क्रिया-व्यापार यांत्रिकता से परिचालित होते हैं। यांत्रिकता के परिणाम स्वरूप उसकी सारी मानवीय भावनाएँ सूख कर धीरे-धीरे नीरस होती जा रही हैं और सेवा-संहिताओं में दबा उसका व्यक्तित्व निरन्तर अपनी ही शोकसभा की तलाश कर रहा है। स्त्री-पुरुषों के भावनात्मक संबंधों में भी यांत्रिकता के कारण एक ठंडापन और नीरसता परिलक्षित होने लगी है। मुद्राराक्षस के असंगत नाटक मनुष्य जीवन की इन्हीं असंगतियों को उभारते हैं।

मुद्राराक्षस का "मरजीवा" नाटक दाम्पत्य जीवन की हताशा, परवशता और टूटन को अंकित करता है। नाटक के प्रमुख पात्र आदर्श और भूमि विसंगत परिवेश के चक्रव्यूह में इस प्रकार घिर गये हैं कि उससे उन्हें छुटकारा नहीं है। जीवन की परवशता उन्हें अनिर्णय की स्थिति में पहुँचा देती है, जहाँ कोई भी निर्णय उनके हाथ नहीं है। गंधे ने भूमि को बुलाया है तो उसे जाना ही पड़ेगा। न गयी तो कोई बुलाने आयेगा। फिर भी न गयी तो पुलिस आयेगी और किसी भी छोटे से जुर्म या केवल संदेह के बल पर उसे पकड़कर ले जायेगी। अर्थात ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ वे छिप सकते हैं। भूमि और आदर्श के लिए जीवन के सभी मार्ग बंद हैं। न कहीं वे भाग सकते हैं, न कोई निर्णय कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में सिवाय आत्महत्या के और कौन सा उपाय शेष रह जाता है ? भूमि और आदर्श का जहर खाने का विचार इसी परवशता का परिचायक है।

भूमि और आदर्श नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या की कोशिश तो जरूर करते हैं, पर उनकी यह कोशिश भी बेकार साबित होती है। नियति मनुष्य से अधिक प्रबल है। मनुष्य नियति के हाथ का खिलौना है। नियति के इशारों पर नाचना ही उसकी नियति है। मनुष्य न अपनी मर्जी के अनुसार जी सकता है और न अपनी मर्जी के अनुसार मर सकता है। विसंगत परिस्थितियों ने मनुष्य को मात्र साधन बना दिया है। भूमि और आदर्श के निम्नलिखित संवाद मनुष्य की इस परवशता को स्पष्ट करते हैं -

आदर्श : ...मगर सुनो, क्या सचमुच मारने वाला मैं हूँ ? तुम समझती हो मारने वाला मैं हूँ ? मैं तो सिर्फ साधन हूँ एक माध्यम।

भूमि : सच है। हम न तो एक दूसरे को जिला सकते हैं न मार सकते हैं सिर्फ साधन बन सकते हैं...माध्यम...[23]

वास्तव में आदर्श और भूमि यह नहीं चाहते थे कि उनके पिताजी मर जाएँ। उनकी हत्या का विचार उनके मन में नहीं था। फिर भी परिस्थितियाँ ऐसी निर्माण होती है कि न चाहते हुए भी उन्हें पिता की हत्या करनी पड़ती है। इससे यही स्पष्ट होता है कि आधुनिक सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न विषमताओं और विसंगतियों

ने न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व को बल्कि उसके समूचे जीवन को भी पराधीन बना दिया है।

नाटक के अन्य पात्रों में पत्रकार, पुलिस अफसर और हवलदार माधो के चरित्रों में परवशता दिखाई देती है। परवशता के कारण ही इन पात्रों को न चाहते हुए मिनिस्टर शिवराज गंधे का साथ देना पड़ता है। वर्तमान राजनीतिक जीवन में नेता लोग अपनी धाक जमाने के लिए हमेशा कार्यरत रहते हैं। इसके लिए कभी वे लोगों का हाल जानने का बहाना बनाकर दौरे पर निकलते हैं, तो कभी भाषण झाड़ते फिरते हैं। इस प्रकार कोई मंत्री जब दौरे पर निकलता है तो उसके साथ काफी लोग होते हैं। फोटो खींचवाकर खबरे छपवाने के लिए पत्रकार को और सुरक्षा हेतु पुलिस अफसर तथा सिपाहियों को उसके साथ रहकर काफी कष्ट उठाने पड़ते हैं। मिनिस्टर शिवराज गंधे के साथ रहने वाले पत्रकार के "यार बोर हो गया हूँ उस बड़ढे से। हद होती है। साला अपनी धाक जमा रहा है और परेड़ हमारी हो रही है।"[24] अथवा पुलिस अफसर के "मिनिस्टर के साथ ड्यूटी बहुत मुश्किल होती है।"[25] - कथनों में उनकी परवशता स्पष्ट रूप से उभरती है।

"**योर्स फेथफुली**" नाटक के सभी पात्र नोकरी की पराधीनता के कारण यांत्रिक जीवन जीने को बाध्य है। उनके सारे क्रिया-व्यापार यांत्रिकता से परिचालित होते हैं। समय पर आना, समय पर जाना और अफसर की आज्ञानुसार यांत्रिकता से कार्य करना ही उनकी नियति है। कार्यालय का डिस्पेचर जब दस मिनट लेट आता है तो अफसर उसके नाम के आगे लाल निशान बना देता है। यह लाल निशान दफ्तरी जीवन की यांत्रिकता को ही सूचित करता है। इसी प्रकार अफसर के पीछे कार्यालय के सभी कर्मचारियों का दफ्तर की संहिता और हड़ताल में शामिल न होने के संबंध में प्रतिज्ञा को दुहराना[26] सरकारी कार्यालय की की संवेदनशून्यता, निर्ममता और यांत्रिकता को प्रस्तुत करता है। वास्तव में सभी कर्मचारी जानते हैं कि दफ्तर के बाहर चल रही हड़ताल उनके हित में हैं, वे लोग उनके लिए भी लड़ रहे हैं; पर नोकरी की पराधीनता उन्हें हड़ताल में हिस्सा लेने से रोकती हैं। दफ्तर का चपरासी दफ्तरी यांत्रिक जीवन और अफसर की घिनोनी वृत्ति के कारण उबकाई से पीड़ित है, वह छुट्टी चाहता है पर फण्डामेंटल रूल्स नं.चोदह का डर दिखाकर उसे छुट्टी नहीं दी जाती। दफ्तरके कर्मचारी अपने हाथ के लिए भी दूसरों के मोहताज है। व्यवस्था की यांत्रिकता से उलझकर जिसका एक हाथ कटा हुआ है उस क्लर्क नं.1 से अफसर कहता है - "अच्छा होता कि तुम लोग हाथ रखते ही नहीं। बल्कि दफ्तर यह भी पूछ सकता है कि हाथ आए कहाँ से ? क्या इनके लिए तुमने परमिशन ली थी ? तुमने हाथों के लिए इजाज़त

ली थी ?"[27]

"योर्स फेथफुली"" नाटक में आद्यन्त प्रयुक्त कर्मचारियों की कोरस-ध्वनि दफ्तरी यांत्रिक जीवन को भली भांति प्रस्तुत करती है। आफिस स्टेनो कंचन रूपा की त्रासदी के पीछे भी दफ्तरी जीवन की यांत्रिकता और नौकरी की पराधीनता दिखाई देती है। अफसर की यौनेच्छा पूर्ति के लिए उसके चेम्बर में आते ही कंचन रूपा का साडी उतारना[28] और अफसर के अत्याचारों को चुपचाप सहना इसी परवशता के कारण है। यही परवशता और दफ्तरी जीवन की यांत्रिकता उसे अपनी ही शोकसभा में सम्मिलित नहीं होने देती। वास्तव में "कंचन रूपा के अपनी ही शोक सभा में शामिल होने की याचना के पीछे जो यंत्रणा है उससे बिल्कुल असम्पृक्त कार्यालय का परिवेश सिर्फ संहिता के अमानवीय सूत्रों में उलझता रह जाता है। दफ्तरों की फाइलों में दब कर समाप्त हो चुके व्यक्तित्त्वों वाले किसी भी व्यक्ति को देखकर कौन कह सकता है कि वह निरंतर अपनी शोकसभा की तलाश ही नहीं कर रहा है ?"[29]

अफसर के व्यक्तित्व में भी यांत्रिकता और परवशता परिलक्षित होती है। मातमपुर्सी के लिए इकट्ठे कर्मचारियों के सामने अफसर जो भाषण देता है वह अमानवीय यांत्रिक मानसिकता और निस्संगता का परिचायक है - " देवियों और सज्जनों! आज मुझे खुशी है कि आपने मुझे इस जलसे में शरीक होने का मौका दिया। यह मेरा सौभाग्य है..."[30]

जब मिस कंचन रूपा अफसर से अपनी शोकसभा में हिस्सा न ले सकने की वजह जानना चाहती है तो व्यवस्था के खिलाफ न जा सकने की अपनी परवशता स्पष्ट करते हुए अफसर कहता है - "मिस रूपा...इस दुनिया में बहुत कुछ ऐसा होता है जिसे हम नहीं चाहते फिर भी होता है और उसे एक्सेप्ट करना पड़ता है...स्वीकारना पड़ता है..."[31] वास्तव में अफसर व्यापक भ्रष्टाचार का एक यांत्रिक पूर्जा, कुर्सी पर बैठा एक ओहदा मात्र है। अपनी परवशता का वर्णन वह स्वयं करता है- "आखिर मुझे एक पद मिला है, अधिकार मिले हैं। क्यों मिले हैं ? काश तुम जान पाती रूपा। उन्होंने .... उन्होंने ये अधिकार...ये अधिकार उन्होंने मेरे कंधो से मेरे बाजू उतारने के बाद दिए थे। अब मेरे बाजू नहीं है,..मेरे हाथ नहीं हैं रूपा।....एक दिन उन्होंने मुझे कुर्सी से धकेल दिया और मेरी जगह एक ओहदा बैठा गए, एक स्टेटस्, एक पद बैठा गए।"[32]

तीसरे क्लर्क का तो समूचा जीवन ही इस परवशता का शिकार है। उसके जीवन की विड़म्बना यह है कि विवाहित होते हुए भी उसे अपने आपको अविवाहित बताना पड़ता है। इसी कारण अपनी पत्नी कंचन रूपा के साथ दफ्तर में वह बात तक नहीं करता ।

बच्चा आने से भेद खुल सकता है, इसलिए वह नसबंदी करा लेता है। पर अंत में नोकरी की यह पराधीनता और परवशता दफ्तर में ही उसे आत्महत्या करने के लिए बाध्य कर देती है।

"तिलचट्टा" नाटक के देव और केशी जीवन की एकरसता और यांत्रिकता से ऊब चुके हैं। सम-सामायिक विसंगतियों ने पति-पत्नी के बीच एक दीवार खड़ी कर दी है। जीवन की यांत्रिकता से ऊबे हुए ये पति-पत्नी रात में बिस्तर पर लेटकर कुत्ते, तिलचट्टे और चूहों की बातें करते हैं। उनके परस्पर संबंधों में जो ठंडापन और यांत्रिकता आई है, उसका बयान करते हुए देव कहता है - "बिस्तर पर करने लायक बातें अब बाकी ही कहाँ रहीं ? ···बिस्तर पर आने के बाद थोडे-से संवाद, फिर कपड़े उतारना। थोडी देर बाद कपड़े पहन लेना और बत्ती जलाना···फिर बाथरूम जाना।··हर रात मैं पूछता हूँ··ओढ़ने की चादर रख ली ? तुम पूछती हो···घड़ी में चाबी दे दी ? पानी का गिलास रख लिया ? बत्ती दुबारा बुझ जाती है··"[33]

जीवन में व्याप्त एकरसता, उकताहट और यांत्रिकता से छुटकारा पाने के लिए देव और केशी एक तीसरे आदमी की कल्पना करते हैं। उन्हें अपने जीवन में कोई संभावना नहीं दिखाई देती। अतः तरह-तरह की संभावनाओं को वे अपने मानसिक प्रक्षेपण में देखते हैं। काले डाक्टर तथा बकरे की बोली बोलने वाले आदमी की कहानी इसी का प्रतिफलन है। देव कहता है- "काले डाक्टर की कहानी गढ़-गढ़कर पांच बरस उकताहट तोड़ी। फिर उस बकरे की बोली बोलने वाले आदमी की कहानी आ गयी-उससे पांच दिन भी ऊब नहीं टूटी-पांच दिन में ही वह बासी पड गयी।"[34]

केशी गैर-मर्दों से रिश्ता रखती है अथवा नहीं, यह बात संदिग्ध है, पर नाटक में केशी और उसके अस्पताल के काले डाक्टर के संबंधों को लेकर जो संकेत दिये गये हैं, उनसे ऐसा जरूर लगता है कि नोकरी की पराधीनता ही केशी को डाक्टर के साथ संबंध रखने और डाक्टर के बच्चे को अपने गर्भ में बढ़ाने के लिए बाध्य करती है। वह डाक्टर को पाजी कहती है,[35] पर डाक्टर जब उसके साथ पाजीपन से पेश आता है तो उसका विरोध नहीं करती। शायद नोकरी की परवशता ही उसे विरोध करने से रोके रहती है।

"तेन्दुआ" नाटक के लड़कों का भूषणराय और रेनु राय की आज्ञानुसार कार्य करना, संतरी के बुलाने पर अन्दर जाकर माली की लाश उठाकर लाना, दान पत्र पर माली की स्त्री का अँगूठा लेना तथा प्रधानमंत्री के भाषण के चलते भीड़ को रोकने का प्रयास करना आदि बातें उनकी परवशता को सूचित करती हैं। तीन-तीन के लाईन में खड़े होकर उनका

रिहर्सल करना यांत्रिकता का परिचायक है। माली का उच्च वर्ग की महिलाओं द्वारा दी गई यातनाओं को चुपचाप सहना और उफ् तक न करना तथा माली की स्त्री का माली की लाश को देखकर मौन विलाप करना भी उनकी परवशता को सूचित करता है।

"तेन्दुआ" नाटक में निम्न वर्ग के पात्रों के साथ उच्च वर्ग के पात्रों में भी परवशता दिखाई देती है। प्रस्तुत नाटक का भूषणराय पुलिस कमिश्नर होते हुए भी पत्नी के वश में रहता है। पत्नी की इच्छा की खातिर ही उसे पकड़े हुए बंदी को पुलिस लॉक अप में रखने के बदले पत्नी के हाथ सौंपना पड़ता है। नौकरी की पराधीनता ही उसे अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं करने देती। पत्नी के साथ वह क्लब जाना चाहता है, पर नौकरी की परवशता के कारण क्लब जाने के बदले उसे मीटिंग का इंतजाम देखना पड़ता है।

प्रधानमंत्री के भाषण के संबंध में नाटककार ने संकेत दिये हैं कि वह कुछ न समझ में आने वाली ध्वनियों में और बिल्कुल किसी अनजानी भाषा में है अथवा भाषण के लिए किसी भाषा के वक्तव्य का उल्टा टेप बजाया जाएगा।[36] नाटककार के ये संकेत प्रधानमंत्री के भाषण के माध्यम से आज के नेताओं के भाषण की निरर्थकता और यांत्रिकता को प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार जीवन की निरर्थकता, एकरसता और यांत्रिकता से ऊबी हुई मिसेज मदान और रेनु राय का माली को सेक्सुअली एक्साइट करने के लिए उसे तरह-तरह से यातनाएँ देने में भी यांत्रिकता दिखाई देती हैं।

6. **बौद्धिक नपुंसकता -**

आज का बुद्धिजीवी युवा वर्ग भी विसंगत परिवेश के कारण दिशाहीनता की ओर अग्रसर है। पढ़े-लिखे होने के बावजूद आज के बुद्धिजीवी को बेकारी, बेरोजगारी और उससे उत्पन्न जीवन के अभावों का सामना करना पड़ता है। अपने जीवन-मूल्यों, आदर्शों और संस्कारों को तिलांजली देकर बेबस और लाचार जीवन अपनाना पड़ता है। वर्तमान शिक्षा पध्दति केवल शिक्षित बेकारों की संख्या बढ़ाती है, उन्हें आजीविका के साधन नहीं देती। परिणामस्वरूप आजीविका के लिए लालायित आज का बुद्धिजीवी वर्ग सामाजिक-राजनीतिक विसंगत परिवेश में उलझकर गोते खाने के लिए विवश है।

आज के बुद्धिजीवी वर्ग में विद्रोह और आक्रोश की भावनाएँ तो हैं, पर कहीं भी वह विद्रोह करता नजर नहीं आता। बौद्धिक नपुंसकता ने उसे उदासीन और निष्क्रिय बना डाला है। डॉ. श्रीमती रीताकुमार के शब्दों में- "बुध्दिजीवी व्यक्ति अपने आदर्शों और स्वाभिमान की रक्षा के कारण युग की असंगतियों से समझौता नहीं कर पाता पर विड़म्बना

यह है कि विषमताओं से साहस के साथ कर्म के स्तर पर संघर्ष करना भी वह नहीं जानता। यही कारण है कि इस संघर्ष में मानसिक स्तर पर क्षत-विक्षत हो प्रायः नुपंसक आचरण अपनाता चला जाता है।"[37]

"मरजीवा" नाटक के आदर्श, भूमि और युवक उच्च शिक्षित होने के बावजूद बौद्धिक नपुंसकता के शिकार हैं। आदर्श एम्.ए. है, उसकी पत्नी भूमि ग्रेज्युएट है, मुर्दमशुमारी करने वाला युवक भी एम.ए.है; फिर भी बेकारी, बेरोजगारी और अभावग्रस्त जीवन से वे त्रस्त हैं। पहले आदर्श किसी स्कूल में टीचर की नौकरी करता था, पर शायद अपने स्वाभिमान और आदर्श के कारण ही वह वहाँ की स्थितियों से समझौता नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप मैनेजमेंट उसे नौकरी से हटा देती है और आजीविका-विहिन आदर्श अपनी पत्नी भूमि के साथ विसंगत परिवेश में उलझकर निष्क्रिय जीवन को अपनाता है।

आजीविका के लिए लालायित आदर्श की पढ़ी-लिखी पत्नी भी माडलिंग के विचार से कभी किसी फोटोग्राफर को और कभी किसी फिल्म के कैमेरेमैन को अपने घर बुलाती रहती है और जब वे नहीं आते तो बौद्धिक नपुंसकता का शिकार बनकर किसी पेशेवर माडेल की तरह आदर्श के बूढ़े पागल बाप से अपनी तस्वीरें खिंचवाती रहती है। बौद्धिक नपुंसकता के कारण ही आदर्श और भूमि न तो गंधे के व्यभिचार के निमंत्रण को स्वीकार कर सकते हैं और न ही उसका विरोध कर सकते हैं। बौद्धिक नपुंसकता का सामना न कर पाने की अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए आदर्श कहता है - "मैं जानता हूँ, हम इस बौद्धिक नपुंसकता का सामना नहीं कर पाते इसीलिए हमें चक्कर आने लगता है।"[38]

आदर्श और भूमि एक फिलासफर की बात करते हैं, जो अपने पीछे केवल एक मोजा छोड़कर गया है। आधुनिक विसंगत परिवेश में एक फिलासफर अपने पीछे और छोड़ भी क्या सकता है ?

मुर्दमशुमारी करने वाला युवक बेकारी की वजह से ही यह काम करता है। आधुनिक शिक्षा की निरर्थकता पर प्रकाश डालते हुए वह कहता है- "मैंने दो साल पहले एम.ए. कर लिया था फिर पी.एच.डी. कर रहा था लेकिन बाद में सोचा...जनाब आप ही बताइए...व्हाट इज द यूस ? होगा क्या ?"[39] इसमें शिक्षा के प्रति उसकी उदासीनता ही दिखाई देती है। पढ़े-लिखे होकर भी आदर्श का कोई पोलिटिकल व्यूज न होना भी आधुनिक बुद्धिजावी वर्ग की उदासीन वृत्ति को उजागर करता है। यही बौद्धिक नपुंसकता उसे और उसके सारे परिवार को मरजीवा बनाती है। वर्तमान युग के बुद्धिजीवियों पर हावी हो रही नपुंसकता स्वीकार करते हुए आदर्श कहता है- "कितनी ही बार हमने कान्फ्रेस

किया है-कितनी ही बार ऐसे अपराधों का इकबाल करना चाहा है जो हमने किए ही नहीं। भूमि हमारा सबसे बड़ा अपराध तो यही है कि हमने कुछ नहीं किया···एक छोटा सा झूठ भी ठीक तरह से नहीं बोल सके···हम पर हमेशा एक नपुंसकता हावी रही है···एक बौद्धिक नपुंसकता···"[40]

"**योर्स फेथफुली**" में अफसर और दफ्तर के अन्य कर्मचारियों की निष्क्रियता बौद्धिक नपुंसकता के कारण ही है। कार्यालय में काम के वक्त इन कर्मचारियों का गप्पे हाँकना, एक-दूसरे को किस्से सुनाना या लगातार विज्ञापन पढ़ने रहना और अफसर के स्टेनो के साथ पाशविक बर्ताव को देखकर भी उसका विरोध न करना आदि बातें उनकी बौद्धिक नपुंसकता को उभारती है। "**तिलचट्टा**" नाटक में देव और केशी के दाम्पत्य जीवन की त्रासदी, सोचने के विषय को लेकर पिण्डारियों की आपसी बातचीत और पढ़े-लिखे होने के बावजूद डॉक्टर के क्रिया-व्यापार बौद्धिक नपुंसकता को उभारते हैं। साथ ही साथ संवादों के बीच-बीच में देव का अचानक मौन हो जाना भी मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी पुरुष की नपुंसकता का द्योतक है। इसी प्रकार "**तेन्दुआ**" नाटक में भी उच्च शिक्षित महिलाओं-मिसेज मदान और रेनु राय के क्रिया-व्यापार बौद्धिक नपुंसकता को व्यंजित करते हैं।

7· **द्विपक्षीय संदिग्धियाँ -**

विसंगत परिवेश में जीने के लिए अभिशप्त मनुष्य के जीवन में अनेक द्विपक्षीय संदिग्धियाँ होती हैं। उसके जीवन में ऐसी अनेक बातें होती हैं, जो अन्तर्विरोध और उभयमुखता पैदा करती हैं। मनुष्य का अधिकांश जीवन इन द्विपक्षीय संदिग्धियों के बीच ही गुजर जाता है। ये द्विपक्षीय संदिग्धियाँ सही क्या है और गलत क्या है इसके बारे में सम्भ्रम पैदा करती हैं। सच और झूठ की सीमारेखा पर खड़ी ये संदिग्धियाँ मनुष्य को उलझन में डाल देती है। साथ ही होने और न होने अर्थात अनिश्चय की यह स्थिति मनुष्य को असामान्य (Abnormal) बनाकर असंगत आचरण अपनाने को भी बाध्य करती है।

मुद्राराक्षस के अनुसार हर सामाजिक यथार्थ के दो सत्य होते हैं, जो मानवीय संवेदनाओं को आकार देते हैं और जिनकी प्रामाणिकता सामाजिक दृष्टि से संदिग्ध होने के बावजूद कहीं मानवीय नियति का हिस्सा बनती जाती हैं। इन्हीं संदिग्धियों से मानवीय नियति की त्रासदी के यात्रा-पथ का मानचित्र तेयार होता है। इसलिए अगर असंदिग्ध कुछ है तो वह त्रासदी और बाकी सब संदिग्धियों का मजमुआ।[41]

द्विपक्षीय संदिग्धियों की दृष्टि से मुद्राराक्षस का "तिलचट्टा" नाटक विशेष उल्लेख्य है। नाटक में ऐसी अनेक द्विपक्षीय संदिग्धियाँ वर्तमान हैं, जो होने और न होने का भ्रम पैदा करती हैं। स्वयं नाटककार भी है और नहीं है की इस औपनिषदिक स्थिति के बीच अनिश्चय को इस नाटक की चुनौती मानता है।[42] वास्तव में मानव नियति की त्रासदी उभारना ही प्रस्तुत नाटक में नाटककार का प्रमुख उद्देश्य है। इसलिए नाटक में चरित्र नहीं, यह त्रासदी ही प्रमुख है। नाटककार नाटक में किसी व्यक्तित्व को उभारने का उतना प्रयास नहीं करता जितना पात्रों के चरित्र को संदिग्ध बनाने का। क्योंकि इन्हीं संदिग्धयों से मानव नियति की त्रासदी के यात्रा-पथ का मानचित्र तैयार होता है। नाटक में प्रयुक्त द्विपक्षीय संदिग्धियों के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

फरार आतंकवादी से केशी का परिचय है। नहीं है, देव की घड़ी घड़ीसाज के पास है। नहीं है, टाइम-बम के साथ जुड़ी घड़ी देव की है। नहीं है, घड़ियाँ एक जैसी दो हैं। नहीं है, पुलिस हिरासत से भागा हुआ आतंकवादी और बकरे की बोली बोलने वाला काला आदमी एक ही है। नहीं है, बकरे की बोली बोलने वाले काले आदमी को केशी जानती है। नहीं जानती है, केशी को गर्भ है। नहीं है, केशी का गर्भ (अगर वह है) देव से है। किसी और से है, केशी ने गर्भ गिराने के लिए इंजेक्शन लिया है। नहीं लिया है, केशी के अस्पताल का काला डॉक्टर ही आतंकवादी है। नहीं है, कुत्ते को केशी ने मारा है। नही है, दफनाते वक्त देव का कुत्ता जिन्दा था। नहीं था, देव नामर्द है। नहीं है, बकरे की बोली बोलने वाले आदमी की कहानी सच है। नहीं है, डॉक्टर की कहानी सच है। नहीं है, देव ने नींद की एक गोली खायी है। दस गोलियाँ खायी हैं, नींद की गोलियों की वजह से देव की मृत्यु होती है। नहीं होती, पुलिस हिरासत से भागा हुआ आतंकवादी, बकरे की बोली बोलने वाला काला आदमी और केशी के अस्पताल का काला डॉक्टर तीनों एक ही है। नहीं है - इत्यादि।

डॉ॰गोविंद चातक के अनुसार मुद्राराक्षस अपने नाटकों में मानव मन की ढकी परतों और अव्याख्यायित रिश्तों को उधेड़ने का प्रयत्न करते हैं। उनके नाटकीय पात्र ऐसे लोग होते हैं जो अन्दर से खंडित हो चुके होते हैं और उनके अलग-अलग खंड ही जैसे समय-समय पर मुखर हो उठते हैं जिससे वास्तविकता के बजाय आंतरिक विरोध, द्विपक्षी उक्तियाँ और संदिग्धियाँ उभर कर सामने आती है।··इसे एक ही स्थिति या पात्र को दो विभिन्न कोणों से देखना कहें या "सावभौम संत्याशों", "द्विपक्षीय संदिग्धियों" की संयोजना, जिनके माध्यम से लेखक एक या दूसरी बात कहने के बजाय एक सम्पूर्ण त्रासदी को व्यंजित

करने का प्रयास करता है।[43]

"मरजीवा"नाटक में भूमि और आदर्श के संवाद भी उभयमुखता पैदा करते है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

भूमि : ··समझ में नहीं आता कि हुआ क्या था ? या फिर कुछ हुआ भी था या नहीं। सच कहूं आदर्श, अगर अब आज, इस वक्त कुछ कान्फेस करना हो तो सिर्फ यही कहा जा सकता है कि जो कुछ सच था वह इतनी बार बोला गया कि सब झूठ हो गया····सिर्फ झूठ।

आदर्श : तो फिर आओ, हम उसका इकबाल करें जो हमने सचमुच किया हो···

भूमि : सचमुच किया हो ? फिर तो इकबाल सिर्फ यही कर सकते हैं कि मैंने झूठ बोला था····सिर्फ झूठ।[44]

इसी प्रकार पिता की मृत्यु पर आदर्श भूमि से कहता है- "भूमि हम नहीं रोयेंगे" और दूसरे ही क्षण स्वयं रोने लगता है।[45]फिलासफर के बारे में भी एक जगह वह कहता है कि उसे सब मालूम है और फिर यह बताता है कि उसने यों ही एक झूठ गढ़ दिया था। एक कहानी।[46]भूमि की हत्या के संदर्भ में आदर्श अपने आपको मारने वाला नहीं, मात्र साधन या माध्यम मानता है। पर जब भूमि इस बात को स्वीकार करती है तो वह कहता है- "नहीं। यह गलत है। मैं माध्यम नहीं हूँ। मैं किसी दूसरे का हाथ नहीं हूँ। मैं··मैं खुद हूँ।··· हत्या मैं कर रहा हूँ··· सिर्फ मैं।[47]

"योर्स फेथफुली" में अफसर और कंचन रूपा के यौन संबंध एक-दूसरे के विरोध में खड़े होते हैं। एक जगह ऐसा लगता है कि अफसर अनुशासनात्मक कार्यवाही का डर दिखाकर[48] उसे यौन-संबंध रखने के लिए विवश करता है तो दूसरी ओर अफसर के चेम्बर में आते ही कंचन रूपा का साडी उतारना[49] "मैंने सोचा शायद आप मेरे साथ कुछ करेंगे"[50] कहना संदिग्ध लगता है। इसीप्रकार क्लर्क नं·3 और स्टेनो कंचन रूपा के पति-पत्नी के संबंध भी उभयमुखता पैदा करते हैं। एक जगह मिस कंचन रूपा को अपनी पत्नी स्वीकारने वाले क्लर्क नं·3 का मृत स्वर इस सत्य को भी नकार देता है- "मिस रूपा···कुमारी कंचन रूपा मेरी कोई नहीं। सचमुच। सोचता था···पाँच बरस मिस रूपा ने इस दफ्तर में काम किया, पाँच बरस के अरसे में एक किस्सा मेरे दिमाग में फफूँद की तरह पैदा हो गया।"[51] इसीप्रकार "तेन्दुआ" नाटक में ग़रीवों के प्रति वाचिक सहानुभूति प्रकट करने वाली उच्च वर्ग की रेनु राय का गरीब और निरीह माली के साथ क्रूरता से पेश आना परस्पर विरोधी है।

8· विद्रोह, विडम्बना और व्यंग्य बोध के विविध आयाम -

"विसंगत परिस्थितियों में जीते हुए, एकाकीपन की दीवारों में घुटते हुए, घायल क्षितिजों की टूटती पहचान लिए हुए और मूल्यों के विघटन से उत्पन्न संत्रास तथा विडम्बनाओं-विद्रूपताओं को झेलते हुए मुख्यतः दो ही स्थितियाँ सामने उभर सकती हैं, या तो विद्रोह या फिर व्यंग।"[52] मुद्राराक्षस के असंगत नाटकों में विद्रोह की अपेक्षा व्यंग का स्वर अधिक मुखर है।

विद्रोह -

मुद्राराक्षस के सभी असंगत नाटक त्रासद स्थितियों को रूपायित करते हैं। परिणामस्वरूप नाटक के मुख्य पात्र या तो आत्महत्या करते हैं या फिर उनकी हत्या की जाती है। "मरजीवा" में आदर्श और भूमि विसंगत परिस्थितियों से तंग आकर पहले आत्महत्या की ही कोशिश करते हैं, पर उनको यह कोशिश असफल होती है। फिर आदर्श भूमि की हत्या कर स्वयं पुलिस स्टेशन पहुँचता है। वह चाहता है कि उसे फाँसी लगे, पर यहाँ भी उसके हाथ प्रवंचना ही आती है। मिनिस्टर शिवराज गंधे और पुलिस अफसर अपने राजनैतिक हथकण्डों द्वारा उसे प्रधानमंत्री के घर के सामने जिन्दा जला देने की योजना बनाते हैं। आदर्श को हर स्थिति में मरना ही है, पर वह मिनिस्टर शिवराज गंधे और पुलिस अफसर की योजना से समझौता करके मरना अस्वीकार कर विद्रोह की कोशिश तो जरूर करता है, लेकिन जबर्दस्ती उसके ऊपर पेट्रोल छिड़ककर उसे जलाया जाता है और उसके विद्रोह को कुचल दिया जाता है। "योर्स फेथफुली" में तीसरे क्लर्क की आत्महत्या और "तिलचट्टा" में देव की आत्महत्या अथवा "तेन्दुआ" में बंदी माली का बिना कोई प्रतिरोध किये यातनाओं को चुपचाप सहते हुए मर जाना भी इसी बात को प्रमाणित करता है कि विसंगत परिवेश में आम आदमी का विद्रोह कोई माने नहीं रखता है।

विडम्बना और व्यंग-बोध

मुद्राराक्षस के असंगत नाटकों में एब्सर्डिटी की सही अभिव्यंजना विडम्बना या व्यंग में ही हुई है। व्यंग्य-भाव उनके नाटकों में सर्वाधिक मात्रा में विद्यमान है। उनकी नजर से शासन व्यवस्था, पुलिस व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, आधुनिक शिक्षा, निम्न और उच्च वर्ग की स्थिति, जनसंख्या, मातमपुर्सी वर्णव्यवस्था, दान भावना, आतंकवाद और सरकारी कामकाज की यांत्रिकता आदि समाज-व्यवस्था का कोई भी पहलू ऐसा नही छूटा जिस पर उन्होंने व्यंग्य न किया हो। उनके सारे व्यंग्य तीखे और सीधी चोट करने वाले हैं। नाटककार ने विडम्बना और व्यंग्य के माध्यम से विसंगत जीवन के विभिन्न आयामों

को अंकित किया है। यथा -

1· <u>शासन व्यवस्था</u>-

मनुष्य की सबसे बडी विडम्बना यह है कि न वह अपनी मर्जी से जी सकता है और न अपनी मर्जी से मर सकता है। हमारी शासन व्यवस्था उसे मरने की भी स्वतंत्रता नहीं देती। वर्तमान शासन व्यवस्था की इस विसंगति पर सीधे प्रहार करते हुए आदर्श कहता है- "जीने की तो कोई शर्त नहीं होती मगर मौत सर्टिफाई जो होनी चाहिए।"[53]

आज के वर्तमान राजनीतिक नेता दुहेरा व्यक्तित्त्व रखते हैं। वे कहते कुछ और है और करते कुछ और। अक्सर उनके खाने के और दिखाने के दाँत अलग-अलग होते हैं। शिवराज गंधे भी इसीप्रकार का नेता है जो भ्रष्टाचार की दलदल में गले तर फँस कर भी गीता के कर्मफल की बात करता है। इसके विपरीत आदर्श का बूढ़ा बाप विक्षिप्त होने के बावजूद गंधे की तरह मन का बुरा नहीं है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए भूमि कहती है- "तुम्हारे मिनिस्टर से वे शायद ज्यादा अच्छे हैं।"[54]भूमि का यह कथन वर्तमान समाज के राजनीतिक नेताओं के दुहरे व्यक्तित्त्व पर प्रकाश डालता है।

आज वर्तमान राजनीति में स्थिति यह है कि जो भी एक बार नेता बन जाता है, हमेशा अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहता है। इसके लिए वह अपने ही घर में राजनीति का बँटवारा किया करता है, ताकि सत्ता हमेशा उसके ही घर की बनी रहे। शिवराज गंधे के संबंध में कहे गये पत्रकार के ये शब्द वर्तमान नेताओं की सत्तान्धता पर करारा व्यंग्य है-··"बडा भाई मिनिस्टर छोटा भाई विरोधी दल का नेता···उसकी सरकार हारेगी तो इसकी आएगी··"[55] इसीप्रकार शिवराज गंधे द्वारा अपने प्रतिद्वंदी पारस को बदनाम और अपदस्थ कर दुबारा सत्ता हथियाने के लिए की गई आदर्श की हत्या और इस हत्या को दिया गया आत्मदाह का रूप भी व्यंगात्मक रूप में आधुनिक राजनीति के विषैले और भ्रष्ट वातावरण को प्रस्तुत करता है।

"योर्स फेथफुली" के डिस्पैचर का निम्नलिखित कथन व्यवस्था की नीति को व्यंग्यात्मकता से उभारता है- "जब मैंने पहली बार सरकार में नौकरी की थी तो सरकार ने मुझे अपाइंटमेंट लैटर दिया था। उसमें मुझे "डियर सर" लिखा गया था। यू नो···बस उसी दिन सरकार मुझसे मुखातिब हुई थी।···अब सरकार अगर मुझसे कुछ कहना चाहती है तो कहती है··· उसे इत्तला दी जाती है····उसे हुक्म दिया जाता है···डी·ओ·लेटर··क्या··क्या वह लेटर नहीं होता। योर्स सिंसियरली···नहीं कुछ नहीं होता···बस दस्तखत होता है···आफिस आर्डर नम्बर सच एण्ड सच, डेटेड सच एण्ड सच··"[56] इसीप्रकार पहला क्लर्क, जिसका

एक हाथ व्यवस्था की यांत्रिकता से उलझकर कटा हुआ है, खून से लथपथ एक लाल रंग के झंडे को ही अपना हाथ समझ बैठता है। आज की व्यवस्था हाथ होते हुए भी मनुष्य को निहत्था बना देती है। इसी कारण पहला क्लर्क हाथ और झंडे में कोई अंतर महसूस नहीं करता- "थोडे दिन यह यहाँ रह जाय तो लगेगा जैसे मैं इसी के साथ पैदा हुआ था। हाथ के बजाय यहाँ एक खून भरा झंडा ही था...।"[57]

आधुनिक सामाजिक-राजनीतिक विसंगत परिवेश में सही दिशा में सोचना भी कभी-कभी दंडित होने का कारण हो सकता है। "तिलचट्टा" नाटक के पिण्डारियों ने भी कभी सही दिशा में सोचा था, लेकिन बदले में उन्हें दंडित होना पडा था। सही चिंतन की प्रक्रिया को हो व्यवस्था ने प्रतिबंधित कर दिया था। तब से वे न सोचने के लिए संकल्पित हैं- "उसके बाद मैंने सोचा..बस वह आखिरी बार सोचा था..मैंने सोचा कि मैं कम से कम आगे से कुछ नही सोचूँगा। फिर मैंने कभी नहीं सोचा। सोचना.."[58] इसी प्रकार देव द्वारा उठाई गई राजनीतिक पिंडारी की बात भी व्यंग्यात्मक रूप में वर्तमान राजनीतिक नेताओं के असली रूप को उभारती है।

आज वर्तमान भारत में राजनीति के विषैले वातावरण के कारण आतंकवादी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और कोशिश करने के बावजूद हमारी सरकार उसे खत्म करने में असमर्थ सिद्ध हुई है। ऐसा लगता है वस अब आतंकवादी ही जियेंगे और बाकी सब को समाप्त हो जाना पडेगा। देव का यह कथन शासन की असमर्थता पर करारा व्यंग्य है- "हद है। किस कदर बढ़ गये हैं ये कीड़े। और खत्म भी नहीं होते। ऐसा लगता है जैसे ये कीड़े ही अब जिन्दा रहेंगे, बाकी सब कुछ खत्म हो जायेगा।"[59]

"तेन्दुआ" नाटक में माली के भागने की संभावना को लेकर लड़के आपस में जो बातचीत करते हैं वह वर्तमान शासक वर्ग की शोषण प्रवृत्ति की सार्वत्रिकता को व्यंग्यात्मकता से प्रस्तुत करती है-

लड़का 1 : ये भाग क्यों नहीं जाता ?

लड़का 2 : भाग क्यों नही जाता ? तुम्हारा तो सिर फिर गया। तुम इसकी जगह हो फिर भागकर देखो। टाँग तुड़वा दी जायगी।

लडका 5 : और फिर जाओगे कहाँ ? सारी जमीन तो हाकिम की है।[60]

2. <u>पुलिस व्यवस्था</u> -

पुलिस, समाज-व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। समाज में शांतता और सुरक्षा बनाये रखना पुलिस व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके साथ ही लोगों के जान और

माल की रक्षा करना, अपराधियों को पकड़ना और भ्रष्टाचार को बढ़ने न देना पुलिस के अन्य कर्तव्य हैं। पर मुद्राराक्षस के असंगत नाटकों के पुलिस अफसर स्वयं भ्रष्टाचारी और अपराधी हैं। "मरजीवा" का पुलिस अफसर पुलिस स्टेशन में ही एक युवक की हत्या करता है और मिनिस्टर शिवराज गंधे से मिलकर आदर्श की हत्या को आत्मदाह का रूप देने में भी उसकी मदद करता है। उसके ये क्रिया-व्यापार व्यंग्यात्मक रूप से आधुनिक पुलिस व्यवस्था के भ्रष्ट रूप को प्रस्तुत करते हैं। "योर्स फेथफुली" में भी एक पुलिस का एक सिपाही पहले क्लर्क को पीटते हुए घसीटकर ले जाता है। "तिलचट्टा" नाटक में पुलिस हिरासत से किसी आतंकवादी व्यक्ति के भाग जाने की घटना वर्तमान पुलिस-व्यवस्था पर करारा व्यंग्य है। देव कहता है- "अब वे लोग उसे नहीं पकड़ सकते, मै शर्त लगा सकता हूँ। पुलिस हवालात से निकालकर उसको जेल ले जा रही थी। पता नही ये लोग होशियारी क्यों नहीं बरतते। फिर वह खासा खतरनाक आदमी था.."[61] "तेन्दुआ" नाटक में पुलिस कमिश्नर भूषणराय सही अपराधी को छोड़कर एक ग़रीब और निरीह माली को पकड़ता है। इतना ही नहीं, उसे पुलिस लॉक अप में रखने के बदले अपनी पत्नी के हाथ सौंपता है। यह घटना भी वर्तमान पुलिस-व्यवस्था की मनमानी वृत्ति को व्यंग्यात्मक रूप में उभारती है।

3. <u>न्याय-व्यवस्था</u> -

वास्तव में पुलिस द्वारा पकड़े गये अपराधियों को उनके अपराधों के अनुसार सजा सुनाने का काम न्याय व्यवस्था करती है। पर कभी-कभी न्याय-व्यवस्था गलती भी कर सकती है, क्योंकि उपलब्ध प्रमाणों और गवाहियों के आधार पर ही न्याय-व्यवस्था न्यायदान का काम करती है। एक तो नक्सलाइट लोगों को पकड़ने में पुलिस असमर्थ होती है और अगर उन्हें कभी पकड़ा भी गया तो उनके दहशत के कारण लोग गवाहियाँ देने से डरते हैं। परिणामस्वरूप न्याय-व्यवस्था उन्हें कोई सजा नहीं दे सकती। "मरजीवा" नाटक में न्याय-व्यवस्था की इस असमर्थता पर व्यंग करते हुए चूहेमार व्यक्ति कहता है- "पकड़े कैसे जायेंगे साहब ? और मान लो पकड़े भी गये तो गवाहियाँ कहाँ मिलेंगी ? कभी किसी को सामने खड़ा करके तो खून करते नहीं है ?[62] इसी प्रकार आदर्श और भूमि को बाप की हत्या के जुर्म में न्याय-व्यवस्था फाँसी भी दे सकती है या आजन्म कैद भी, लेकिन अगर दोनों भी अपना बचाव न कर फाँसी की ही माँग करे तो न्याय-व्यवस्था द्वारा उन्हें पागल करार देते हुए पागलखाने भेजे जाने की संभावना है। आदर्श और भूमि के पागल न होते हुए भी पागल घोषित किये जाने की यह संभावना न्याय-व्यवस्था पर व्यंग्य ही है। "तेन्दुआ" नाटक में किसी आतंकवादी द्वारा अदालत के संतरी का गला काट जाने

की घटना व्यंग्यात्मक रूप में न्याय-व्यवस्था के मर जाने को सूचित करती है।

4. आधुनिक शिक्षा और बुद्धिजीवी वर्ग -

"मरजीवा" नाटक के आदर्श और भूमि दोनों भी उच्च शिक्षित होने के बावजूद बेकार हैं। आदर्श और भूमि के बारे में मुर्दुमशुमारी वाले युवक का यह कथन वर्तमान शिक्षा की निरर्थकता पर तीखा व्यंग्य है- "आप एम्.ए., पत्नी ग्रेज्युएट और आप बेकार हैं। गुड।"[63] इसी प्रकार पढ़े लिखे होकर भी आदर्श का राजनीति से उदासीन रहना और कोई पोलिटिकल व्यूज न रखना आज के उच्च शिक्षित लोगों पर व्यंग्य है। वर्तमान विसंगत परिवेश में बुद्धिजीवी व्यक्ति को हमेशा साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन जीना पड़ता है। आदर्श, भूमि और मुर्दुमशुमारी वाले युवक का जीवन इसके उदाहरण हैं ही, पर आदर्श और भूमि जिस फिलासफर की बात करते हैं वह फिलासफर भी इसका अपवाद नहीं। फिलासफर की स्थिति पर व्यंग्य करते हुए आदर्श कहता है- "अपने पीछे वह एक जुराब के अलावा और छोड़ भी क्या जाता इस दुनिया में ?"[64]

"तिलचट्टा" नाटक में दो पिण्डारियों की सोचने के विषय पर बातचीत आधुनिक बुद्धिजीवियों की सोचने की रीति पर करारा व्यंग्य है। उदाहरण दृष्टव्य है-

दूसरा : एक बार मैंने देखा था - वह बुद्धिजीवी था - कुर्सी के ऊपर आराम से बैठ जाता था - दोनों टांगे सामने की मेज पर फैला लेता था। होठों में बहुत मोटी-सी बीडी दबा लेता था और बीच-बीच में अपने कान के पीछे खुजाता था।

पहला : लेकिन इसमें से हम तो कुछ भी नहीं कर सकते। सिर्फ कान के पीछे खुजा सकते हैं।[65]

आज का साहित्य भी आम आदमी से दूर होता जा रहा है। इसी बात पर व्यंग्य करते हुए दूसरा पिण्डारी कहता है- "किताबों में मेरा नाम है। उसका नाम है। मेरे भाई का या मेरे बाप के बाबा के बाबा का नाम है ? नहीं है।[66]

5. निम्न और उच्च वर्ग की स्थिति -

मुद्राराक्षस के नाटकों में दिखाई देने वाले निम्न और उच्च वर्ग, आर्थिक विषमता के कारण है। उच्च वर्ग के सुविधाभोगी लोग अपनी धनाढ्यता के बल पर शोषक बन बैठे हैं तो निम्न वर्ग के लोग अपनी निर्धनता के कारण शोषित बने हुए हैं। उच्च वर्ग के लोग अपने स्वार्थ के लिए निम्न वर्ग के लोगों को तरह-तरह से यातनाएँ देते रहते हैं। परिणामतः आज आम आदमी की स्थिति पागल व्यक्ति से भी बदतर हुई दृष्टिगोचर होती है। सामान्यतः जो लोग असम्बद्ध, अर्थहीन तथा विश्रृंखल बातें और क्रियाएँ करते हैं, उन्हें पागल समझा

जाता है। पर क्या हम अपने जीवन और व्यवहार में जो कुछ कहते और करते हैं वह पूर्णतया सुसम्बद्ध, अर्थपूर्ण, संगत और क्रमबद्ध होता है ? अगर नहीं तो हम में और पागलों में क्या अंतर है ? "मरजीवा" के आदर्श का निम्नलिखित कथन आम आदमी की इस स्थिति को व्यंग्यात्मकता से उभारता है- "हम समझ रहे हैं कि हम पागल नहीं है। कौन जाने हम पागलखाने में रहने वालों से ज़्यादा पागल हों।"[67] नाटक में उच्च वर्ग के मिनिस्टर शिवराज गंधे तथा पुलिस अफसर जैसे लोगों की सत्तान्धता और स्वार्थ-लिप्सा के कारण ही आदर्श और भूमि जैसे आम लोगों को मृत्यु का सामना करना पड़ता है।

"योर्स फेथफुली" में सभी कर्मचारी कामचोर और निष्क्रिय हैं। कार्यालय में काम के वक्त विज्ञापन पढ़ना, मातमपुर्सी मनाना, गप्पे हाँकना और किस्से सुनाना ही इनका काम हैं। नाटक के डिस्पेचर का यह कथन सरकारी कार्यालय के कर्मचारियों की निष्क्रियता पर व्यंग्यात्मकता से चोट करता है - "कहो तो मैं सुनाऊं तुम्हें। अजीब-सा किस्सा है। सुनाऊ ? अभी और करना भी क्या है ? सुनाऊ ?[68] इसी प्रकार डिस्पेचर का चपरासी से संबोधित यह कथन - "अरे, तो क्या तुम अपने आपको बहुत ज्यादा जिन्दा समझ रहे हो ?"[69]- इस बात की ओर संकेत करता है कि सरकारी दफ्तर में काम करने वाला हर व्यक्ति मरा हुआ है।

"तेन्दुआ" नाटक में लड़के और माली की स्त्री का लोकगीत की रिहर्सल करना व्यंगात्मक ढंग से माली और उसकी स्त्री पर हुए अत्याचारों को उभारता है। स्त्री के संवाद दृष्टव्य हैं-

> "उन्होंने मेरे हरिन का शिकार कर लिया और उसका माँस अतिथियों को खिला दिया·· ···मैं माता कौशल्या के पास गई। मैंने कहा: माता कौशल्या, मेरे हरिन का मांस तो तुमने अतिथियों को खिला दिया। उसकी खाल पड़ी होगी। मेरे हरिन को खाल मुझे दे दो।"[70]

इस पर उच्च वर्ग की सुविधाभोगी वृत्ति पर व्यंग्यात्मक रूप से प्रकाश डालते हुए कौशल्या के रूप में लड़का 6 कहता है -

> मैं हूँ माता कौशल्या····ए हरिनी तू लौट जा। तुझे मैं हरिन की खाल नहीं दूँगी। इससे एक खँझड़ी मढ़ी जायगी जिससे मेरा बेटा राम खेलेगा।"[71]

इसी प्रकार खँझड़ी के बजने पर ढाक के पेड़ के नीचे खड़ी होकर हिरनी के रोने की बात भी व्यंग्यात्मक रूप से आम आदमी की विवशता को उजागर करती है। लड़के 3 की कुछ कहने की छटपटाहट और अन्यों द्वारा उसे रोकने की कोशिश भी प्रजातंत्र के इस युग में भाषण-स्वतंत्रता पर लगायी जाने वाली पाबंदी को व्यंग्यात्मकता से उभारती है।

उच्च वर्ग की महिला रेनु राय किसी को टार्चर किये जाते देखने में और स्वयं टार्चर करने में थ्रिल का अनुभव करती है। दूसरों की यातनाएँ देखकर थ्रिल अनुभव करने की उच्च वर्ग की प्रवृत्ति पर नाटककार ने यहाँ व्यंग्य किया है। इसी प्रकार रेनु राय द्वारा मिसेज मदान के तेन्दुए के साथ अपने बूट की तुलना करना भी उच्च वर्ग की महिलाओं मे स्थित होड प्रवृत्ति पर व्यंग्य है। नाटक में उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों को तुच्छ और हेय समझते हैं। ह्यूमन टार्च के रूप में माली को जलाते वक्त रेनु राय धुएँ के कारण अपना कमरा खराब न हो इसलिए माली को कमरे के बाहर जलाने की बात करती है। यह बात उच्च वर्ग की औरों को हेय समझने की वृत्ति पर करारा व्यंग्य है। माली की मृत्यु पर मिसेज मदान का "तो क्या हुआ ?"[72] यह अभिप्राय भी इसी बात को संकेतित करता है।

6· **जनसंख्या** -

आज वर्तमान भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या एक महत्वपूर्ण समस्या है। महँगाई, बेकारी, बेरोजगारी आदि के पीछे मूलतः यह बढ़ती जनसंख्या ही वर्तमान है। आधुनिक काल में जनसंख्या इतनी बढ़ गई है कि लोगों का जीना हराम हो गया है। जहाँ देखो वहाँ भीड़ दिखाई देती है। इस भीड़ की वजह से ठीक तरह यात्रा करना भी मनुष्य को संभव नहीं रहा। उसे अपनी यात्रा लटकते हुए पूरी करनी पडती है। "**योर्स फेथफुली**" के पहले क्लर्क का एक हाथ इसी प्रकार भीड़ से लदी एक ट्राम से लटक कर सफर करते हुए गिर जाने के कारण कट कर अलग हो गया है। "**तिलचट्टा**" में भी कुत्तों की तरह बढ़ती जनसंख्या पर व्यंग्य करते हुए केशी कहती है- "वे पैदा होते वक्त चाहे जो हों, जीते सिर्फ कुत्तों की तरह हैं। उनके दुमें नहीं होती, थूथनियाँ नहीं होतीं, लेकिन···"[73]

7· **मातमपुर्सी और शोक-समाचार** -

आधुनिक काल में किसी की मृत्यु पर मातमपुर्सी मनाना या शोक प्रकट करना भी शिष्टाचार बनता जा रहा है। उसमें किसी प्रकार की भावनात्मकता नहीं होती। आज ये शोक समाचार एकरस और यांत्रिक बनते जा रहे हैं। "**योर्स फेथफुली**" नाटक में मिस कंचन रूपा की शोक सभा के समय दूसरे क्लर्क द्वारा श्रीमान घइयोमल बूटा राम के दादा श्रीमान मुसद्दीलालजी गंगानगर वाले का अखबार में आया शोक समाचार पढ़ना[74] व्यंग्यात्मक रूप से आज के मातमपुर्सी और शोक समाचारों के खोखलेपन को उभारता है। इसी अवसर पर कार्यालय के कर्मचारियों द्वारा प्रस्तुत "सारे जहाँ से अच्छा···" गीत एक अपूर्व विडम्बना प्रस्तुत करता है। "**तिलचट्टा**"नाटक में देव और केशी द्वारा कुत्ते की मौत के बाद उसके

लिए लंबी नींद, आराम और शांति के लिए प्रार्थना करना भी व्यंग्यात्मक है।

8· सरकारी कार्यनीति -

मुद्राराक्षस का "योर्स फेथफुली" नाटक अफसर, डिस्पैचर, तीनों क्लर्क, स्टेनो कंचन रूपा और चपरासी के माध्यम से वर्तमान सरकारी कार्यालय की यांत्रिक और संवेदनशून्य कार्य-पध्दति को व्यंग्यात्मकता से उभारता है। नाटक के आरंभ में ही कार्यालय के कर्मचारी अफसर के पीछे दफ्तर की संहिता और हड़ताल में शामिल न होने की प्रतिज्ञा को दुहराते हैं। यह बात सरकारी कर्मचारियों के नियमों में बँधे जीवन और कार्यालय की यांत्रिक कार्य-पध्दति को विडम्बनात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है। डिस्पैचर का निम्नलिखित कथन भी सरकारी कार्यालय की कार्यनीति पर तीखा प्रहार करता है- ""एफीशिएन्सी बार है···रूक गए तो अटके रह जाओगे"[75]

स्टेनो कंचन रूपा की शोक सभा के दौरान दूसरा क्लर्क एक व्यवस्था का एक प्रश्न उठाता है कि स्टेनो कंचन रूपा मरी हुई है और इसलिए वह अपनी शोकसभा में शामिल नहीं हो सकती। दूसरे क्लर्क की यह बात भावनाहीनता, संवेदनशून्यता और दफ्तरी यांत्रिक जीवन को व्यंगात्मकता से प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार अफसर और स्टेनो कंचन रूपा के यौन संबंधो के संदर्भ में चपरासी द्वारा दिया गया नदी में बहती फूली हुई लाश के साथ किसी व्यक्ति के संबंध स्थापित करने का दृष्टान्त व्यंग्यात्मक रूप में अफसर की पशुवृत्ति को उभारता है। सरकार द्वारा हाथ कटे हुए पहले क्लर्क की इन्क्वायरी होने और उस पर डिसिप्लिनरी कार्यवाही होने की संभावना भी सरकारी नीति पर करारा व्यंग्य है।

9· अन्य आयाम -

मुद्राराक्षस ने अपने असंगत नाटकों में औरतो को भी व्यंग्य का विषय बनाया है। हर नारी अपने आपको सुन्दर मानती है और अधिक से अधिक सुन्दर दिखने की उसकी कोशिश होती है। "मरजीवा" की भूमि और "तेन्दुआ" की रेनु राय इसी कोशिश में व्यस्त दिखाई देती है। भूमि तो आदर्श के साथ आत्महत्या का निर्णय कर चुकी है। वास्तव में मरने वाले व्यक्ति को इस बात की चिंता नहीं होनी चाहिए की वह कैसा दिखता है ? लेकिन भूमि इस स्थिति में भी जब दरवाजे पर कोई दस्तक करता है तो तुरन्त अपना मुँह साडी से पोंछ लेती है। उसकी यह हरकत स्त्री के सुन्दरता के मोह को व्यंग्यात्मकता से उभारती है।

औरतों का यह स्वभाव होता है कि हमेशा वे अपनी ही कहती जाती है, कभी किसी दूसरे की बात वे सुनती नहीं। औरतों के इस बातूनी स्वभाव पर व्यंग्य करते हुए

दूसरा क्लर्क अखबार का एक विज्ञापन पढ़ता है- "जरूरत है सात ऐसी लड़कियो की जो टेलीफोन सुन सके.."[76] "तेन्दुआ" नाटक माली के स्त्री के संबंध में लड़कों का यह कथन- "औरतों के साथ बहुत ही मुसीबत हो जाती है"- व्यंगयात्मक रूप से औरतों के स्वभाव पर प्रकाश डालता है।

मुद्राराक्षस के "मरजीवा" नाटक में आदर्श और मुर्दुमशुमारी वाले युवक के वार्तालाप द्वारा मुर्दुमशुमारी के खोखलेपन पर व्यंग्य किया गया है। कुछ हिस्सा दृष्टव्य है-

युवक : आपकी फैमिली में कितने लोग कमाते हैं ?

आदर्श : कोई नहीं।

युवक : (लिखता है) कोई नहीं। अच्छा तो मासिक आमदनी कितनी है ?

आदर्श : कुछ नहीं।

युवक : (लिखता है) माहवार आमदनी कुछ नहीं। और इन्कम टैक्स ?

आदर्श : आप अजीब आदमी है ? पहले बता चुका हूँ कि हमारी फैमिली में कोई कमाने वाला नहीं है। फिर यह भी बता चुका हूँ कि मासिक आमदनी कुछ नहीं है। जाहिर है कि इन्कम टैक्स का सवाल ही नहीं उठता।

युवक : जी हाँ, जी हाँ..वो तो ठीक है। मगर मुझे तो इस कागज़ पर बनाये गये खानों में सभी बातें लिखनी होती हैं न।[77]

"योर्स फेथफुली" में आधुनिक समाज में लड़ने वाले एक नये वर्ग के द्वारा वर्ण-व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए डिस्पेचर पुराने जमाने में काम के बँटे होने की बात करता है। पुराने जमाने में जैसे ब्राह्मण सोचते थे, क्षत्रिय लड़ते थे, वैश्य व्यापार करते थे वैसे आज के जमाने में लड़ने वालों का भी एक नया वर्ग बन गया है।[78]

"तिलचट्टा" नाटक में आधुनिक समाज में बढ़ती हुई आतंकवादी प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। दरवाजे के बाहर भौंकने वाले कुत्तों के बारे में देव और केशी का वार्तालाप इस दृष्टि से दृष्टव्य है-

केशी : दरवाजें ठीक से बंद हैं न ?

देव : हां, लेकिन फायदा क्या ? मफतलाल का चाचा - वह तो कितने तालों के अन्दर बंद था। सूराख से खाना-नाश्ता लिया करता था-

केशी : मगर ये कुत्तें हैं।

देव : उससे क्या फर्क पड़ता है। जो नीले कागज पर सुर्ख बाल-प्वाइंट वाले कलम से धमकी भरे खत लिखते हैं, वे इनसे क्या कम है ? हो सकता है, ये कुत्ते भी हमें बाल-प्वाइंट वाले कलम से खत लिखें।[79]

"तेन्दुआ" नाटक में आधुनिक दान भावना पर करारा व्यंग्य किया गया है।

वस्तुतः दान भावना में एक उदात्तता होती है। दान अपनी मर्जी से दिया जाता है। लेकिन प्रस्तुत नाटक में उच्च वर्ग के सुविधाभोगी लोग माली के स्त्री से माली की लाश का दान जबर्दस्ती से लेते हैं। जबर्दस्ती से लिये गये इस दान के बदले माली की स्त्री को सर्टिफिकेट, सनद या तमगा मिलने की बात भी आधुनिक दान भावना के खोखलेपन को व्यंग्यात्मकता से उभारती है।

इस प्रकार मुद्राराक्षस ने अपने नाटकों में व्यंग्य को प्रचुर मात्रा में स्थान देकर असंगत जीवन के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि-

* ऊपरी तौर से मानव जीवन जितना सुसंगत दिखाई देता है, आंतरिक तौर से वह उतना ही उसम्बध्द तथा विसंगत होता है। विसंगति मानव जीवन की मानो अनिवार्यता ही बन गई है, जिसे मुद्राराक्षस ने अपनी आलोच्य नाटकों में नग्न यथार्थ के रूप में अभिव्यक्त किया है।
* मुद्राराक्षस ने अपने असंगत नाटकों में आज के नेता तथा अफसर वर्ग की शोषक वृत्ति तथा नृशंसता को चित्रित करके यह दिखाया है कि आज के नेता और अफसर मनुष्यता को छोड़ पशुता की ओर बढ़ रहे हैं।
* मानव जीवन परिवर्तनशील होने के कारण आधुनिक युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी रूप में नैतिकता के नये प्रतिमान विद्यमान नज़र आते हैं और उनके कारण समाज के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्य-विघटन दिखाई देता है।
* आर्थिक विपन्नता, परवशता और यांत्रिकता के कारण आज का बुद्धिजीवी युवा वर्ग दिशाहीन होकर नपुंसक आचरण अपनाने को बाध्य है।
* मुद्राराक्षस ने सार्वभौम सत्यांशों, द्विपक्षीस संदिग्धियों, अन्तर्विरोध और उभयमुखता के माध्यम से मानवीय नियति की त्रासदी को व्यंजित करने का प्रयास किया है।
* मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त असंगतियों को नाटककार ने विडम्बना और व्यंग के माध्यम से तीखे और पैन शब्दों में व्यक्त किया है।

संदर्भ -

1· मुद्राराक्षस, "मरजीवा", सं·अनुल्लिखित, पृ·28

2· वही, पृ·30-31

3· वही, पृ·34

4· वही, पृ·71

5· संपा·डॉ·विजयकांत धर दुबे, "हिन्दी नाटक : प्राक्कथन और दिशाएँ"(डॉ·नरनारायण राय, "स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकःप्रवृत्ति और विश्लेषण, लेख) प्र·सं·1985, पृ·69

6· डॉ·श्रीमती रीताकुमार, "स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकःमोहन राकेश के विशेष संदर्भ में",प्र·सं·1980, पृ·138

7· मुद्राराक्षस, "तेन्दुआ", प्र·सं·1975, पृ·46

8· वही, (स्वगत), पृ·22

9· डॉ·शेखर शर्मा, "समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक", प्र·सं·1988, पृ·114

10· मुद्राराक्षस, "मरजीवा", सं·अनुल्लिखित, पृ·49

11· वही, पृ·24

12· मुद्राराक्षस, "तिलचट्टा" द्वि·सं·1976, पृ·47

13· वही पृ·75

14· संपा डॉ·विजयकांत धर दुबे, "साठोत्तरी हिंदी नाटक" (डॉ·विजयकांत धर दुबे,"साठोत्तरी हिंदी नाटकःमूल्य अस्मिता की खोज", लेख) प्र·सं·1983, पृ·72

15· मुद्राराक्षस, "तेन्दुआ" प्र·सं·1975, पृ·45

16· वही, पृ·87

17· वही, (स्वगत) पृ·18

18· मुद्राराक्षस, "मरजीवा", सं·अनुल्लिखित, पृ·32-33

19· मुद्राराक्षस, "योर्स फेथफुली",सं·अनुल्लिखित, पृ·58

20· वही, पृ·60

21· मुद्राराक्षस, "तिलचट्टा" द्वि·सं·1976, पृ·65-67

22· मुद्राराक्षस, "तेन्दुआ" प्र·सं·1975, पृ·42

23· मुद्राराक्षस, "मरजीवा", सं·अनुल्लिखित, पृ·63

24· वही, पृ·27

25· वही, पृ·34

26· मुद्राराक्षस, "योर्स फेथफुली", सं·अनुल्लिखित, पृ·30-31

27· वही, पृ·53

28· वही, पृ·42,78,80

29· वही, (भूमिका) पृ·21

30· वही, पृ·32-33

31· वही, पृ·59

32· वही पृ·41

33· मुद्राराक्षस, "तिलचट्टा" दि·सं·1976, पृ·22-23

34· वही, पृ·91-92

35· वही, पृ·69

36· मुद्राराक्षस, "तेन्दुआ" प्र·सं·1975, पृ·84

37· डॉ·श्रीमती रीताकुमार, "स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक:मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में", प्र·सं·1980, पृ·135-136

38· मुद्राराक्षस, "मरजीवा",सं·अनुल्लिखित, पृ·51

39· वही, पृ·43

40· वही, पृ·50-51

41· मुद्राराक्षस, "तिलचट्टा" (चंदबाते) दि·सं·1976 पृ·8-12

42· वही, पृ·12

43· डॉ·गोविंद चातक,"आधुनिक हिंदी नाटक:भाषिक और संवादीय संरचना",प्र·सं·1982, पृ·199-200

44· मुद्राराक्षस, "मरजीवा", सं·अनुल्लिखित, पृ·50

45· वही, पृ·59

46· वही, पृ·60-61

47· वही, पृ·63-64

48· मुद्राराक्षस, "योर्स फेथफुली", सं·अनुल्लिखित, पृ·40

49· वही, पृ·42,78,80

50· वही, पृ·48,54

51· वही, पृ·87

52· जगदीश नंदिनी, "आठवें दशक के संदर्भ में समसामयिक कविता में विसंगति", प्र·सं·1984, पृ·87

53· मुद्राराक्षस,"मरजीवा", सं·अनुल्लिखित, पृ·54

UNIVERSITY

54· वही, पृ·37

55· वही पृ·27

56· मुद्राराक्षस, "योर्स फेथफुली", सं·अनुल्लिखित, पृ·66-67

57· वही, पृ·83

58· मुद्राराक्षस, "तिलचट्टा" द्वि·सं·1976, पृ·44

59· वही, पृ·68

60· मुद्राराक्षस, "तेन्दुआ" प्र·सं·1975, पृ·48

61· मुद्राराक्षस, "तिलचट्टा",द्वि·सं·1976, पृ·24

62· मुद्राराक्षस, "मरजीवा", सं·अनुल्लिखित, पृ·58·

63· वही, पृ·43

64· वही, पृ· 48

65· मुद्राराक्षस, "तिलचट्टा" द्वि·सं·1976, पृ·42

66· वही, पृ· 43

67· मुद्राराक्षस, "मरजीवा", सं·अनुल्लिखित, पृ·55

68· मुद्राराक्षस, "योर्स फेथफुली", सं·अनुल्लिखित, पृ·56

69· वही, पृ· 49

70· मुद्राराक्षस, "तेन्दुआ" प्र·सं·1975, पृ·81

71· वही, पृ·82

72· वही, पृ·74

73· मुद्राराक्षस, "तिलचट्टा",द्वि·सं·1976, पृ·58

74· मुद्राराक्षस, "योर्स फेथफुली", सं·अनुल्लिखित, पृ·61-62

75· वही, पृ· 29

76· वही, पृ· 32

77· मुद्राराक्षस,"मरजीवा", सं· अनुल्लिखित, पृ·42

78· मुद्राराक्षस, "योर्स फेथफुली", सं·अनुल्लिखित, पृ·73

79· मुद्राराक्षस, "तिलचट्टा", द्वि·सं·1976, पृ·55